भारतीय इतिहास में अशोक का स्थान बहुत महत्त्व का है। वे अहिंसा और लोक-कल्याण की भावना के सदेशवाहक माने जाते हैं। उनका प्रारंभिक जीवन एक योद्धा और विजेता का जीवन था और वे अपने शत्रुओं के लिए काल के समान थे। इसी हिंसा में से एक दिन अहिंसा का जन्म हुआ और एकाएक उनका हृदय-परिवर्तन हुआ। यह एक सम्राट् का हृदय-परिवर्तन था, इसलिए इसका प्रभाव भी समूचे भारत पर पड़ा। इस हृदय-परिवर्तन के सम्बन्ध में लेखक की कल्पना बहुत ही हृदयस्पर्शी और मनोरजक है। यही कल्पना और उसका सुन्दर *चित्रण इस नाटक को लोकप्रिय बनाने के* निमित्त हैं।

करुण रस का भी बहुत सुन्दर परिपाक इस नाटक में हुआ है।

यह मर्मस्पर्शी और आदर्श प्रधान नाटक जहाँ अशोक के जीवन को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करने में समर्थ हुआ है, वहाँ वह समसामयिक परिस्थितियों में भी जब कि सभी बडे राष्ट्र अपनी सहारक शक्ति को बढाने में लगे हुए हैं, अत्यन्त उपयोगी है।

अशोक

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

भी बन गए हैं, जहाँ फिल्म की सहायता से उपयुक्त सज्जा और पृष्ठभूमि देकर पात्रों का अभिनय दिखाया जाता है।

'अशोक' एक आदर्श-प्रधान नाटक है। मुझे स्मरण है कि मेरा यह नाटक प्रकाशित होने के लगभग साथ ही साथ पंजाब विश्वविद्यालय के एफ० ए० के पाठ्यक्रम में ले लिया गया था। उसी वर्ष मुझे लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज की साहित्य-सभा ने निमन्त्रित किया था। अब तक पंजाब में हिन्दी बहुत लोकप्रिय नहीं थी। पर यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उक्त कालेज में ऐसे विद्यार्थी भी बहुत बड़ी संख्या में 'अशोक' पढ़ चुके थे, जिन्होंने हिन्दी नहीं ले रखी थी। परिणाम यह हुआ कि हाल खचाखच भर गया था। 'अशोक' नाटक के सम्बन्ध में इन विद्यार्थियों ने मुझसे कई तरह के प्रश्न किए थे। अधिकांश विद्यार्थी यह नाटक पढ़कर प्रवित हुए थे। उसके बाद यह नाटक कितनी ही परीक्षाओं में पाठ्य-क्रम के रूप में रहा है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि 'अशोक' को मेरे नवयुवक पाठकों ने निरन्तर पसन्द किया है।

'अशोक' के सभी गीत मेरे मित्र 'प्रियहंस' के लिखे हुए हैं और इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

४, पटौदी हाउस,
नई दिल्ली
२६ जनवरी, १९५६

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

भी बन गए हैं, जहाँ शिल्प की सहायता से उपयुक्त सज्जा और पृष्ठभूमि देकर नाटकों का अभिनय दिखाया जाता है।

'अशोक' एक आदर्श-प्रधान नाटक है। मुझे स्मरण है कि मेरा यह नाटक प्रकाशित होने के लगभग साथ ही साथ पंजाब विश्वविद्यालय ने एफ० ए० के पाठ्यक्रम में ले लिया गया था। उसी वर्ष मुझे लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज की साहित्य-सभा ने निमन्त्रित किया था। अब तक पंजाब में हिन्दी बहुत लोकप्रिय नहीं थी। पर यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उक्त कालेज में ऐसे विद्यार्थी भी बहुत बड़ी संख्या में 'अशोक' पढ़ चुके थे, जिन्होंने हिन्दी नहीं ले रखी थी। परिणाम यह हुआ कि हाल खचाखच भर गया था। 'अशोक' नाटक के सम्बन्ध में उन विद्यार्थियों ने मुझसे कई तरह के प्रश्न किए थे। अधिकांश विद्यार्थी इस नाटक पढ़कर प्रभावित हुए थे। उसके बाद यह नाटक कितनी ही परीक्षाओं में पाठ्य-क्रम के रूप में रहा है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि 'अशोक' को मेरे नवयुवक पाठकों ने निरन्तर पसन्द किया है।

'अशोक' के सभी गीत मेरे मित्र 'चिन्हम' के लिखे हुए हैं और इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

६, गांधी ग्राउंड,
नई दिल्ली
२१ जनवरी, १९५६

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

नाटक के पात्र

पुरुष

ुसार—भारत-सम्राट् (अशोक के पिता)
मन—युवराज (बिन्दुसार के बड़े पुत्र)
ोक—भारत-सम्राट् (बिन्दुसार के मंझले पुत्र)
ष्य—बिन्दुसार के छोटे पुत्र
ाचार्य उपगुप्त—अशोक के गुरु (बौद्धधर्म के सबसे बड़े नेता)
ण्डगिरि—पहले क्षत्रप, फिर सेनापति
ाकरी—पहले सहायक सेनापति, फिर सेनापति
पवर्धन—शीला के पिता
णाल } अशोक के पुत्र
हेन्द्र }

स्त्री

ीला—युवराज सुमन की वाग्दत्ता वधू
तपी (तिष्यरक्षिता)—अशोक की पत्नी (सम्राज्ञी)
त्रा—अशोक की बहिन
ंघमित्रा—अशोक की पुत्री
िजया—एक सैनिक की पत्नी

स्थान

ाटलिपुत्र—भारत-साम्राज्य की राजधानी
क्षशिला—सीमाप्रान्त की राजधानी
ुशाली—कलिंग की राजधानी

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र

समय—सायंकाल

[युवराज सुमन अपने दोनों भाइयों, अशोक तथा तिष्य के साथ सायंकाल की पोशाक पहने हुए राजप्रासाद के उद्यान में खड़े हैं। नगर के मंदिरों में आरती हो रही है और उसकी हल्की-हल्की आवाज़ राजकुमारों के कानों में पड़ रही है।]

सुमन—तुमने भी कुछ सुना तिष्य?

तिष्य—क्या चीज़? यह आरती के घंटों की मधुर ध्वनि?

सुमन—बस, तुम्हारी कल्पना और तुम्हारा संसार तो यहीं तक ही सीमित है। (मुड़कर) अशोक, तुमने तिष्य से तक्षशिला के विद्रोह का ज़िक्र नहीं किया?

अशोक—नहीं युवराज, मुझे ख़याल ही नहीं आया! और तिष्य को इसे जानने की आवश्यकता भी क्या है!

सुमन—ख़ैर, जाने दो। यह बताओ कि तुमने तक्षशिला जाने के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया है?

अशोक—तक्षशिला के विद्रोह को तो मैं बच्चों का खिलवाड़ समझता हूँ। दो-एक अधिकारियों के बदल देने से ही यह विद्रोह शान्त हो जाएगा।

सुमन — मगर काम सीखने के लिए भी तुम्हारा वहाँ जाना जरूरी है न ?

[धीरे-धीरे तिष्य दोनों भाइयों से पृथक् होकर दूर पर खड़ा होता है और दूर पर दिखाई देने वाले मंदिर के शिखरों की ओर देखने लगता है।]

अशोक—जाने में तो कोई हानि नहीं। परन्तु इन दिनों राजधानी में ही रहने को जी चाहता है।

सुमन—वह किसलिए ?

अशोक—इसका कोई विशेष कारण नहीं है युवराज। यों ही बाहर जाने को जी नहीं चाहता।

सुमन—मगर राजकीय कर्तव्य जी की चाह से ऊपर की चीज है, यह तो तुम मानते हो न अशोक ?

अशोक—इस साम्राज्य के युवराज को राजकीय कर्तव्य की चिन्ता एक साधारण राजकुमार की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए।

सुमन—क्या कहा, साधारण राजकुमार ! अशोक, तुम जानते हो न कि तुम्हारे इस कथन का अभिप्राय क्या है ?

[अशोक कोई जवाब नहीं देता, वह आँखें नीची करके चुपचाप खड़ा रहता है]

सुमन—(भर्राई हुई आवाज में) अशोक !

[अशोक उसी तरह चुपचाप खड़ा रहता है।]

सुमन—भाई अशोक !

अशोक—(धीरे से) कहिए, मुझे कब तक्षशिला जाना होगा ?

सुमन—अशोक, सच-सच कहो; तुम्हें मेरा युवराज होना पसन्द नहीं है क्या ?

अशोक—मैंने तो यह नहीं कहा !

सुमन—सच-सच कहो अशोक ! (गला भर आता है)

अशोक—मुझे क्षमा कीजिए युवराज !

सुमन—मुझे युवराज मत कहो; भाई कहकर पुकारो, सिर्फ भाई ।

अशोक—मैं कल सुबह ही तक्षशिला के लिए प्रस्थान कर जाऊंगा भाई साहब !

सुमन—(अशोक के कन्धे पर हाथ रखकर) मेरी ओर देखो अशोक !

[इसी समय तिष्य नजदीक आकर कहता है—]

तिष्य—(सुमन की ओर लक्ष्य करके) एक बात का जवाब देंगे भाई साहब ? (प्रायः साथ ही साथ) मगर इस तरह अचानक बीच में आकर बाधा डाल देने के लिए मुझे क्षमा कीजिएगा ।

सुमन—(जबरदस्ती थोड़ा-सा मुस्कराकर) क्या पूछते हो तिष्य ?

तिष्य—कोई खास बात तो है नहीं; मगर आप यह बताइए कि आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया ?

[सुमन और अशोक दोनों मुस्करा पड़ते हैं ।]

तिष्य—(जरा गम्भीर होकर) उँह, आप दोनों मुझे अभी तक बच्चा समझते हैं ।

अशोक—और नहीं तो तुम किसी के बुजुर्ग हो क्या ?

सुमन—अच्छा तिष्य, तुम्हें अचानक यह प्रश्न सूझ कैसे गया ?

तिष्य—(खुश होकर) देखिए न, भाई साहब ! अभी-अभी, जब आप दोनों यहां आपस में बहस करने में व्यस्त थे, मैं कुछ दूर खड़े रहकर मन्दिरों के वाद्य की अस्पष्ट ध्वनि सुनने का आनन्द ले रहा था। अचानक एक स्वर मुझे ऐसा भी सुनाई दिया, जो कल ही भाभी तिष्यरक्षिता ने मुझे सुनाया । ओह, भाभी कितनी अच्छी वीणा बजाती है ! सहसा मुझे भाभी की याद आ गई, और उसके बाद अचानक यों ही खयाल आ गया कि जब अशोक मेरे लिए एक भाभी ला चुके हैं, तो फिर आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया ?

अशोक—नहीं तिष्य, तुमने अभी तक ठीक-ठीक कारण नहीं बताया।

तिष्य—क्या नहीं बताया ?

अशोक—वास्तविक कारण।

तिष्य—अच्छा, आप ही बता दीजिए।

अशोक—तुम्हें अचानक इच्छा हुई होगी कि मैं भी क्यों न शीघ्र [ह]ी विवाह कर लूं। इसके बाद तुम्हें ख्याल आया होगा कि जब तक [त]ुमसे बड़े भाई का विवाह न हो जाए, तब तक तुम्हारी ओर ध्यान ही [क]ौन देगा। क्यों, है न यही बात !

तिष्य—(सुमन की ओर देखकर) देखिए न, भाई साहब, ये मुझे [अ]भी तक बच्चा समझते हैं।

सुमन—(ज़रा-सा मुस्कराकर) राजप्रासाद की पूजा का समय हो [ग]या। चलो, उस ओर चलें।

[तीनों भाइयों का प्रस्थान। सुमन का चेहरा अब भी काफी उदास प्रतीत हो रहा है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—तक्षशिला के मुख्य बाजार का एक भाग

समय—अभ्याह्नोत्तर

[नागरिकों की एक भीड़ एकत्र है और शोरगुल हो रहा है।]

एक नागरिक—क्षत्रप चण्डगिरि आज सुबह से दिखाई नहीं दिया।

दूसरा ना०—हां, हां, दिखाई तो वह सचमुच नहीं दिया।

तीसरा ना०—चण्डगिरि भाग गया।

चौथा ना०—(चिल्लाकर) चण्डगिरि का नाश हो !

सब लोग—(एकसाथ चिल्लाकर) अत्याचारी चण्डगिरि का

नाश हो !

पहला ना०—वह दुष्ट यदि इस समय मुझे दिखाई दे जाए तो मैं उसका सिर काट डालूं।

दूसरा ना०—वाह, तुम ऐसे ही वीर हो !

पहला ना०—और तुमने मुझे क्या समझ रखा है !

दूसरा ना०—एक आदमी।

पहला ना०—(झुंझलाकर) मगर मैं तो तुम्हें आदमी भी नहीं समझता।

नागरिकों का नेता—(ज़रा ऊंचे स्थान पर खड़े होकर) भाइयो, ज़रा शान्त हो जाओ !

[सन्नाटा छा जाता है।]

नेता—तुमने एक नया समाचार सुना ?

नागरिक—नहीं, कोई नहीं।

नेता—सम्राट् ने हमें विद्रोही घोषित कर दिया है और राजकुमार अशोक हमें दण्ड देने के लिए बहुत शीघ्र तक्षशिला पहुंच रहे हैं।

पहला नागरिक—मगर क्या वे हमारी बात भी न सुनेंगे ?

नेता—हम विद्रोही हैं। हमारी बात कौन सुनेगा ?

तीसरा ना०—(चिल्लाकर) तक्षशिला के नागरिको, किसी के सामने मत झुको !

चौथा ना०—(ऊंचे स्वर में) तक्षशिला की स्वाधीनता अमर रहे!

सब लोग—(एक साथ) तक्षशिला की स्वाधीनता अमर रहे !

नेता—भाइयो, हमारे धैर्य और साहस की परीक्षा का वास्तविक अवसर अब आया है। यह मत समझ लो कि तक्षशिला के राजप्रासाद को आग लगाकर और पापी चण्डगिरि को भगाकर हमारे कर्तव्य की समाप्ति हो गई। नहीं, कदापि नहीं ! चण्डगिरि भाग गया है, मगर

वे लोग मौजूद हैं, जिन्होंने चण्डगिरि को चण्डगिरि बनाया था। एक चण्डगिरि चला गया, तो उसकी जगह वे दूसरा चण्डगिरि भेज देंगे। नागरिको, अपनी वीरता पर कलंक मत आने दो। उनके हाथ में शक्ति है, राजदण्ड है, सेना है। मगर याद रखो, उनकी यह शक्ति हम लोगों की दृढ़ता के मुकाबले में चूर-चूर हो जाएगी। हम लोग यदि आपस में मिलकर रहेंगे, संगठित रहेंगे, तो सम्राट् की भाड़े की सेना हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकेगी। तक्षशिला की स्वाधीनता अमर रहेगी!

सब लोग—(चिल्लाकर) तक्षशिला का गौरव अमर रहे!

नेता—शाबाश, भाइयो! याद रखो, हम तक्षशिला के नागरिक हैं। वह गरिमाशाली तक्षशिला, जो संसार के ज्ञान का, संसार की विद्या का और संसार के विचारों का केन्द्र है। सम्पूर्ण विश्व आज तक्षशिला के सम्मुख आदर के साथ सिर झुकाता है। हम लोग गर्व के साथ अपना सिर ऊंचा करके कह सकते हैं कि जो कुछ तक्षशिला सोचता है, वही कुछ सारा संसार सोचने लगता है।

नागरिको, तुम्हारी इसी गरिमाशालिनी मातृभूमि की स्वाधीनता का अपहरण करने के लिए, पापी और अत्याचारी चण्डगिरि का समर्थन करने के लिए सम्राट् ने अपने उद्दण्ड पुत्र राजकुमार अशोक को भेजा है। अशोक अपनी सेना-सहित शीघ्र तक्षशिला पहुंचने वाला है। बोलो, इस समाचार ने तुम्हें डरा तो नहीं दिया?

अनेक आवाजें—नहीं, कदापि नहीं।

नेता—शीघ्र ही अशोक तक्षशिला पहुंच जाएगा और तब तुम्हारे साहस की परीक्षा होगी। तब तुम लोग कायर तो नहीं बनोगे?

अनेक आवाजें—नहीं, कभी नहीं।

[भीड़ में सैनिक वेशधारी एक विदेशी युवक आगे बढ़कर कहता है—]

विदेशी सैनिक—अशोक तक्षशिला पहुंच गया है।

नेता—सचमुच ?

वि० सैनिक—जी हां।

एक आवाज़—चलो उस पर हमला करें।

दूसरी आवाज़—अशोक के शिविर को आग लगा दो !

तीसरी आवाज़—अशोक का नाश हो !

सब लोग—अशोक का नाश हो !

चौथी आवाज़—चलो, अभी चलो !

पांचवीं आवाज़—अशोक की सेना का डेरा किस ओर है ?

छठी आवाज़—उत्तर दिशा में।

सातवीं आवाज़—नहीं, दक्षिण में।

आठवीं आवाज़—नहीं, पश्चिम में।

नौवीं आवाज़—चलो, किसी ओर तो चलो।

सब लोग—चलो, चलो !

[वही विदेशी सैनिक कूदकर एक ऊंचे स्थान पर चढ़ जाता है और चिल्लाकर कहता है—]

वि० सैनिक—ठहरो !

[सब लोग चौंककर उसकी ओर देखने लगते हैं।]

वि० सैनिक—तक्षशिला के नागरिको, तुममें से किसी ने अशोक को देखा है ?

[एक क्षण तक लोग विस्मय से उसकी ओर देखते रहते हैं उसके बाद—]

एक आवाज़—यह कौन है ?

दूसरी आवाज़—जासूस है !

तीसरी आवाज़—नहीं, यात्री है।

चौथी आवाज़—नहीं, सैनिक है।

पांचवीं आवाज़—नहीं, विद्यार्थी है।

नेता—तुम कौन हो ?

वि० सैनिक—मैं एक क्षत्रिय हूं। मगर मेरी बात का जवाब दो तुममें से किसी ने अशोक को कभी देखा है ?

नेता—नहीं, किसी ने भी नहीं।

वि० सैनिक—यदि वह तुम्हारे सम्मुख आ जाए, तो तुम उसे पहचान सकोगे ?

नेता—नहीं पहचान सकेंगे।

वि० सैनिक—तो जिस व्यक्ति को तुमने न देखा है और न जिसे पहचानते हो, उसे तुम अपना शत्रु किस तरह समझ रहे हो ?

नेता—वह चण्डगिरि की सहायता करने आया है।

वि० सैनिक—यह बात तुम कैसे कह सकते हो ?

[नेता के जवाब देने से पूर्व ही—]

एक आवाज़—दुश्मन है !

दूसरी आवाज़—भेदी है !

तीसरी आवाज़—देखना, जाने न पाए !

वि० सैनिक—(ऊंचे स्वर में) चुप हो जाओ। नागरिको, मैं स्वयं अपना परिचय देता हूं। सुनो, मैं ही राजकुमार अशोक हूं।

[अपने कपड़ों में से राजपट्ट निकालकर ऊंचा कर देता है। सभी नागरिक चकित होकर अशोक की ओर देखने लगते हैं। सदा के स्वभाव से राजपट्ट देखते ही अधिकांश का सिर स्वयं झुक जाता है।]

अशोक—तक्षशिला के नागरिको, राजकुमार अशोक तुम्हारा अतिथि आया है, तुम अतिथि की बात शांत भाव से सुनोगे।

[सब लोग चुप रहते हैं।]

भाइयो, तुम्हारे नेता ने ठीक ही कहा था। तक्षशिला संसार के विचारों

का और संसार की विद्या का केन्द्र है; और तुम लोगों का यह एक महान् गौरव है कि तुम तक्षशिला के निवासी हो। सीमाप्रान्त की इस महामहिम राजधानी के निवासियो, तुम सदा इस बात को याद रखो, कि मगध-साम्राज्य के अधिपति महाराजाधिराज सम्राट् बिन्दुसार को सोते-जागते, उठते-बैठते, सदैव तुम्हारे ही कल्याण की चिन्ता रहती है। क्या तुम्हें ज्ञात है कि सम्राट् को, मेरे वृद्ध पिता को, तुम्हारे इस आचरण से कितना क्लेश पहुंचा है ? अगर नहीं ज्ञात है तो मुझसे पूछ देखो। तक्षशिला के निवासियों को आजीवन वे अपनी आदर्श प्रजा समझते रहे हैं। इस गरिमाशाली नगर के निवासियों के सम्बन्ध में वे कहा करते थे कि संसार के सम्मुख दिखाने के लिए मेरे पास कुछ है तो वह तक्षशिला और उसके निवासी ही हैं।

नागरिको, तुम चण्डगिरि को पापी और अत्याचारी कहते हो। परन्तु सोचकर देखो कि सम्राट् के आदेशों और राज्य के विधानों को तोड़कर क्या तुमने उतना बड़ा अपराध नहीं किया ?

नेता—सम्राट् ने चण्डगिरि को पदच्युत क्यों नहीं किया ?

एक नागरिक—चण्डगिरि अत्याचारी है।

दूसरा ना०—चण्डगिरि लुटेरा है।

तीसरा ना०—तक्षशिला चण्डगिरि का शासन कभी सहन नहीं करेगी।

अशोक—भाइयो, शान्त होकर मेरी बात सुनो, चण्डगिरि कैसा है, इस सम्बन्ध में मैंने कुछ भी नहीं कहा। उसके आचरण का निर्णय सम्राट् करेंगे। परन्तु मैं तुमसे पूछता हूं कि तुमने अपने पितृतुल्य सम्राट् की अवज्ञा क्यों की ? तुमने एक क्षण के लिए भी यह बात अपने मस्तिष्क में क्यों जमने दी कि मगध-साम्राज्य में रहकर तुम्हारी स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती ? भाइयो, तक्षशिला नगर की धूल का एक-एक कण मेरे लिए तीर्थ

के कारण प्रसिद्ध है। यह नगर मेरे दादा, महान् चन्द्रगुप्त मौर्य की शिक्षा-भूमि रहा है। इसी नगर में रहकर उन्होंने अपने साम्राज्य की, अपने महान् आन्दोलन के निर्माण की नींव डाली थी। क्या तुम उस महापुरुष को भूल गए ? बोलो, बोलो ! क्या तुम महान् चन्द्रगुप्त को भूल गए ?

सभी नागरिक—(चिल्लाकर) सम्राट् चन्द्रगुप्त का यश अमर रहे !

अशोक—एक बार मिलकर बोलो—मगध-साम्राज्य का यश अमर रहे !

सभी नागरिक—मगध-साम्राज्य का यश अमर रहे !

अशोक—शाबाश, तक्षशिले ! तुमने आज इस गरिमामयी नगरी का गौरव बढ़ा दिया। एक बार और मिलकर यही नाद दिशा-दिशा में गूंज उठे। बहुत हर्ष की बात है कि मगध-साम्राज्य का मस्तिष्क आज भी इसी तरह स्वस्थ और सुरक्षित है।

सब लोग—मगध-साम्राज्य अमर रहे !

राजकुमार अशोक चिरंजीवी हों !

नेता—राजकुमार, आप अब्रत्यिरि का न्याय विचार कीजिए। मैं उस पर अभियोग उपस्थित करता हूं।

अशोक—अभियोग उपस्थित करने का स्थान यह नहीं है।

एक नागरिक—तक्षशिला को क्या यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता कि उस पर किसी राजकुमार का ही शासन रहे ?

नेता—राजकुमार, तक्षशिला आपको चाहती है।

सब लोग—(चिल्लाकर) राजकुमार अशोक चिरजीव रहे !

अशोक—अच्छा भाइयो, यहां नहीं। सम्राट् से आदेश लेकर मैं ही अपना केन्द्र बनाऊंगा।

[जनता में हर्षध्वनि होती है]

तीसरा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के एक सुरम्य मकान का आंगन

समय—चांदनी रात का द्वितीय पहर

[कुमारी वीणा वीणा बजा रही है। कुछ देर तक वीणा बजाते रहने के बाद वह सहसा गाने लगती है।]

गीत

द्वार निकट देख सजनि! कौन गीत गाए
कौन देश बसे, पूछ, आज किधर जाए?
शिथिल कण्ठ कौन बात कहे, क्या सुनाए
कोई गुप्त करुण भाव हृदय में छिपाए।
आज इन्दु कर उठाए अवनि ओर धाए
बीच खड़ी श्याम रजनि, पलक पथ बिछाए।
दुग्ध-धवल विश्व सकल, व्योम झिलमिलाए
एक यही बन्धु दीन विकल क्यों दिखाए
किधर अर्घ्य-कुसुम झरी! पथिक फिर न जाए
खोल द्वार मन्द, साईं दिशा मैं जनाए
अतिथि! चलो भयविहीन, फिरे क्यों लजाए?
आज खुले द्वार खड़ी अर्चना सजाए
देख शान्ति! निकट कुञ्ज, किधर हुआ छाए
देख दूर विजन पन्थ कोई दीख पाए।
मौन मार्ग, शून्य दिशा, चरण-रव न आए
कौन! किधर गौन? हाय, मदन सनसनाए।

[वीणा के पिता दीपवर्ण का प्रवेश]

दीपवर्धन—शीला !

शीला—(चौंककर) ओह, पिताजी, आप हैं ?

दीप०—और तुमने क्या समझा बेटी ?

शीला—मैं समझी, पिताजी हैं !

दीप०—(मुस्कराकर) बेटी, कितनी सुहावनी रात है ! दूर से तुम्हारा स्वर सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे तुम्हारी मां गा रही हो। मुझे २५ बरस पहले की एक इसी तरह की चांदनी रात की याद हो आई, जब मुझसे रूठकर वह ठीक इसी स्थान पर आ बैठी थी, और ठीक इसी लय में, इतनी ही निपुणता के साथ वीणा बजाने लगी थी। बेटी, तुम्हें अपनी माँ की याद है क्या ?

शीला—(गम्भीर हो जाती है) पिताजी, मेरी मां भी तुम्हीं हो। मैं इस दुनिया में किसी को नहीं जानती।

दीप०—शीला ! जानती हो, तुम्हारी मां तुमसे कितना प्यार करती थी ?

शीला—क्यों नहीं पिताजी ! जितना आप मुझसे करते हैं !

दीप०—अभागिनी मातृहीना बच्ची मेरी !

शीला—आज आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं पिताजी ?

दीप०—कुछ नहीं बेटी, यों ही कुछ ख्याल आ गया। आखिर दिल ही तो है।

शीला—क्या बात ख्याल आ गई पिताजी ?

दीप०—यही कि यदि आज तुम्हारी मां जिन्दा होती तो क्या वह मुझे इस बात के लिए बाधित न करती कि तुम्हारा विवाह कर दिया जाए !

शीला—आज आपको क्या हो रहा है पिताजी ! ब्याह-शादी की बातें आपको भी इतनी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं क्या !

[illegible] बेटी, तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर तो दिया ही नहीं।

बताओ तुम्हें अपनी माँ की याद तो है न ?

शीला—माँ की ? मैं तो बहुत छोटी थी न !

दीप०—उन दिनों तुम्हारा तुतलाकर बोलना भी नहीं छूटा था ।

शीला—चलो हटो, यह सब मुझे कुछ भी याद नहीं ।

दीप०—तुम्हारी माँ सचमुच देवी थी । मुझे कभी-कभी ख्याल हो आता है, यदि वह जिन्दा होती तो तुम्हें देख उसे कितनी प्रसन्नता होती ।

[शीला स्थिर भाव से चुपचाप अपने पिता की ओर ताकती रहती है ।]

दीप०—मुझे याद है, तुम्हारे सम्बन्ध में वह कहा करती थी कि मेरी शीला हमारे कुल के गौरव का कारण बनेगी । वह यदि जीवित रह सकती, तो देखती कि किस तरह उसकी बेटी आज पाटलिपुत्र का सबसे अधिक सुन्दर रत्न बन गई है ।

शीला—आज आपको क्या हो गया है पिताजी !

[आगे बढ़कर पिता के कन्धे पर अपना मुंह रख देती है ।]

दीप० – ओह, तुम तो रोने लगीं शीला ! अब मैं समझा तुम्हें अपनी माँ भूली नहीं है ।

शीला—कभी कोई अपनी मा को भी भूल सकता है पिताजी !

दीप०—मगर तुम तो उन दिनों बहुत छोटी थी ।

शीला—इससे क्या हुआ पिताजी ! अपने जीवन की जिस सबसे पहली और पवित्र याद को मैं कीमती निधि के समान अन्दर ही अन्दर छिपाए हुए हूं, अठारह बरस बीत जाने पर भी जिसके सम्बन्ध में अचानक सपना देखकर मेरी सम्पूर्ण देह'यष्टी तक पुलकित हो उठती है, उस माँ को मैं कभी भूल सकती हूं ?

दीप०—ओह बेटी, मगर मैं सचमुच तुम्हारी माँ की जगह भी पूरी कर सकता ।

शीला—पिताजी, बताइए आप दूध पी चुके, या नहीं ?

[दीपवर्धन अभी कोई बहाना सोच ही रहे होते हैं कि शीला झट से रसोईघर की ओर चली जाती है]

शीला—(जाते-जाते) मैं दूध लेकर अभी आई पिताजी !

दीप०—(*आप ही आप*) ओह, *मनुष्य कितना असमर्थ है !* मैं बरसों तक इस बात का भारी प्रयत्न किया कि शीला अपने को मातृहीन न समझे। मुझ ही में वह अपने माँ और बाप दोनों को पा जाए !

[दूध का पात्र हाथ में लिए हुए शीला का प्रवेश]

शीला—दूध पी लीजिए पिताजी !

दीप०—(पात्र हाथ में लेकर) ओह, जो बात कहने आया था, वह तो भूल ही गया। शीला, शीला, अब के राजप्रासाद के होलिकोत्सव में सम्मिलित होने जाओगी ? वहां से निमंत्रण आया है।

शीला—*नहीं, पिताजी, मैं नहीं जाऊंगी।*

दीप०—यह क्या बेटी ! इस उम्र में इतनी एकान्तप्रियता अच्छी नहीं होती।

शीला—इसमें एकान्तप्रियता की कौन-सी बात हुई पिताजी ?

दीप०—*और नहीं तो क्या ? तुम किसी भी समारोह में जाना* पसन्द नहीं करतीं। (उसका मुंह उदास-सा दिखाई देने लगता है)

शीला—(पिता की चिन्ता हटाने के लिए वह खुलकर मुस्करा उठती है) वाह पिताजी, मैं होलिकोत्सव में क्यों नहीं जाऊंगी ? आपने भी झट से मेरी बात पर विश्वास कर लिया ? आप बड़े भोले हैं पिताजी !

दीप०—अच्छा बेटी, मुझे *जरा वीणा बजाकर तो सुनाओ !* कोई ऐसी लय, जो मेरे हृदय के उफान को आंसुओं के रूप में गलाकर आंखों की राह बाहर कर दे।

[*शीला बैठ जाती है और अपने सधे हुए हाथों की सहायता से वीणा में से एक बहुत ही करुण और शान्त स्वर निकालने लगती है।*]

चौथा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के नगर-भवन के निकट का बाजार
समय—प्रभात
[नगर में होलिकोत्सव मनाया जा रहा है]

[बाजार को तोरण और पताकाओं से खूब सजाया गया है। सैनिकों का एक बड़ा जुलूस निकल रहा है। दोनों ओर नागरिकों की भीड़ है। सब लोग सुनियंत्रित हैं। व्यर्थ का शोरगुल कहीं पर नहीं है। क्रमशः सम्राट् का रथ बाजार में आ पहुंचता है। नागरिकों में मानो उत्साह का तूफान आ आता है।]

नागरिक—(तुमुल ध्वनि से) सम्राट् चिरजीवी हों !

[सम्राट् सिर झुका-झुकाकर जनता के इस अभिनन्दन का उत्तर देते जाते हैं। क्रमशः सम्राट् की सवारी पाटलिपुत्र के नगर-भवन के निकट आकर रुक जाती है। नगर-भवन के सम्मुख चौड़ी सीढ़ियाँ हैं। उनपर लाल कपड़ा बिछा हुआ है। सम्राट् रथ से उतर-कर इन सीढ़ियों से होते हुए सिंहासन पर आ पहुंचते हैं। सब पंक्तिबद्ध सैनिक उन्हें नमस्कार करते हैं। इसके बाद सम्राट् सैनिकों और जनता को सम्बोधित करते हैं]

सम्राट—मगध साम्राज्य की इस जगत्प्रसिद्ध राजधानी के नागरिको, आज का यह होलिकोत्सव तुम्हारे लिए शुभ हो !

नागरिक—(तुमुल स्वर में) मगध-साम्राज्य का यश अक्षय हो ! सम्राट् चिरजीवी हों ! !

बिन्दुसार—पुत्रो, होली के इस हर्षोत्सव में आज मैं अनुभव कर रहा

हूं कि मेरा हृदय प्रफुल्लित नहीं है। मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। मेरी शक्तियां क्षीण पड़ गई हैं। कह नहीं सकता कि और कब तक मैं आपकी सेवा कर सकूंगा, इसी से मैं चाहता हूं कि आज इस शुभ अवसर पर युवराज सुमन को साम्राज्य के प्रधान सहकारी के पद पर नियुक्त कर दूं।

[जनता में हर्षध्वनि होती है।]

[इसके बाद बिन्दुसार सुमन को निकट बुलाकर उसके माथे पर तिलक लगाते हैं। सुमन झुककर अपने पिता को नमस्कार करते हैं।]

जनता—(ऊंचे स्वर में)—

सम्राट् चिरजीवी हों!

युवराज सुमन चिरजीवी हों!

[सम्राट् की सवारी धीरे-धीरे आगे बढ़ जाती है।]

पांचवां दृश्य

स्थान—गंगा नदी के तट पर पाटलिपुत्र के राजमहलों में युवराज का निवास-स्थान

समय—सायंकाल

[युवराज सुमन अकेले खड़े हैं। उनके सम्मुख राजमहल का संगमरमर से विविध रंगों से मढ़ा आंगन भीगकर बरसात के सायकालीन आकाश के समान दिखाई दे रहा है, चारों ओर से सुगन्ध की लपटें-सी उठ रही हैं। मालूम होता है, थोड़ी ही देर पहले यहां सुगन्ध और रंगों की वर्षा की गई थी। युवराज एक-टक दृष्टि से इस दृश्य को देख रहे हैं।]

सुमन—नारी सौन्दर्य, सरलता और कोमलता का मूर्तिमान् रूप है। परन्तु मेरी प्रकृति जैसे नारी से घबराती है। आज इन लड़कियों

E920

ने कुछ ही देर में मुझे कितना परेशान कर डाला ! मैं भागकर छिप रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सका। मेरे सम्बन्ध मे नगर की ये सब कुलीन कुमारियाँ न जाने क्या सोचती होंगी आज अगर अशोक यहाँ होता ! वह कितना चचल, क्रियाशील और निपुण है ! वह एक साथ अनेकों को खुश रख सकता है। आज वह यहां होता तो अकेला ही इन सबको परेशान कर देने के लिए काफी था। और मैं ? अच्छा-भला, हंसता-खेलता व्यक्ति भी मेरे पास कुछ ही देर बैठकर गम्भीरता का मनहूस रूप धारण कर लेता है। अपनी-अपनी तबीयत ही तो है ! चलूं, चलकर देखूं कि ये सब कुमारियाँ मेरे सामान के साथ क्या-क्या उत्पात कर गई हैं।

[सुमन आगे बढ़कर महल के एक कमरे में पहुंचते हैं। वहां वे देखते हैं कि कमरे का सारा सामान उल्टा करके रखा हुआ है; यहां तक कि कालीन भी उल्टा बिछा है। कमरे के बीचोबीच एक उल्टी शय्या पर सुमन का एक बड़ा चित्र रखा हुआ है। इस चित्र के नीचे बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा है : "चुप रहो, मैं सन्नाटा चाहता हूं।" इसी तरह दो-तीन कमरों का चक्कर लगाकर युवराज अपने व्यक्तिगत आलेख्य-भवन के निकट पहुंचते हैं।]

सुमन—फिर भी सोचता हूं कि सस्ते में छूट गया। मेरा मजाक उड़ाने वाला तो यहाँ कोई है ही नहीं। अशोक तक्षशिला में है और तिष्य तथा विभा कामरूप में हैं। पिताजी इन बातों में दिलचस्पी लेते ही नहीं। और, जाने दो ज़रा बैठकर अब आराम करना चाहिए।

[आलेख्य-भवन का दरवाजा धीरे से खोलकर सुमन अन्दर चले जाते हैं और अपने गद्देदार उपवेशन के निकट पहुंचते हैं। पर वहां किसी को सोया देख वे चौंक उठते हैं।]

सुमन—है ! यह क्या ! यह कौन है ? (ज़रा अच्छी तरह देखकर) यह तो कोई नारी है। मेरे खास कमरे में एक युवती इस तरह निश्चिंत

भाव से सो रही है ! आश्चर्य है !

[सुमन दबे पांव धीरे-धीरे लौटना शुरू करते हैं। उनके चेहरे पर लज्जा की गहरी छाप दिखाई देने लगी है। दरवाज़े के निकट पहुंचें न पहुंचें अचानक उनका हाथ एक तिपाई से जा टकराता है। तिपाई पर पड़ा चांदी का बड़ा-सा फूलदान अपने अन्दर रखे हुए फूलों के बोझ के कारण पहले ही टेढ़ा-सा हो रहा था, इस धक्के से उलटकर वह नीचे गिर पड़ता है और कमरे-भर में झन्न-सी आवाज गूंज जाती है। युवराज सहसा घबरा उठते हैं।]

सुमन—(घबराहट से) उफ़ !

[युवराज के जी में आता है कि वे भागकर कमरे से बाहर निकल जाएं। परन्तु उन्हें दिखाई दे जाता है कि वह युवती जागकर उठ बैठी है। इस दशा में वहां से भाग जाना उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता। वे चुपचाप खड़े हो जाते हैं। सहसा वह युवती भी उठकर खड़ी हो जाती है। उसके चेहरे पर गहरी लज्जा के भाव दिखाई दे रहे हैं।]

सुमन—(साहस करके) क्षमा कीजिए, मुझे मालूम नहीं था कि इस कमरे में कोई है।

कुमारी—जी ?

सुमन—(एक क्षण तक तो सुमन को कुछ भी नहीं सूझता कि वह क्या कहे। उसके बाद ज़रा संभलकर) कहिए, आपको कहां पहुंचाने का प्रबन्ध करवा दूं ?

कुमारी—मैं आचार्य दीपवर्धन के घर जाऊंगी।

सुमन—आचार्य दीपवर्धन के घर ?

कुमारी—जी हां, वही मेरे पिता हैं।

सुमन—मेरा यह सौभाग्य है कि मैं पाटलिपुत्र के गौरव आचार्य दीपवर्धन की एकमात्र कन्या के सम्मुख खड़ा हूं।

कुमारी—यह सब शोभा की शरारत है युवराज! वह मुझे अपनी बहन चित्रा के कमरे में सोता हुआ छोड़कर अपने-आप खिसक गई।

सुमन—मेरी बहन के कमरे में! आप यह क्या कह रही हैं? मेरी बहन चित्रा तो राजकुमार शिप्य के साथ कामरूप गई हुई है।

कुमारी—मगर यह कमरा तो उन्हीं का आलेख्य-भवन है न?

सुमन—जी नहीं, यह मेरा व्यक्तिगत आलेख्य-भवन है। मगर यह तो बिलकुल मामूली बात है।

कुमारी—(बहुत अधिक लज्जित होकर) मेरी तबीयत कुछ खराब थी। मैं लेटना चाहती थी। शोभा ने मुझसे कहा कि राजकुमारी चित्रा के इस कमरे में लेट आओ, जाते हुए मैं तुम्हें अपने साथ लेती जाऊंगी। थोड़ी ही देर में मुझे नींद आ गई। उधर शोभा स्वयं तो चली गई, परन्तु मुझे साथ नहीं ले गई। क्षमा कीजिएगा युवराज।

सुमन—यह तो बिलकुल साधारण-सी बात है कुमारी!

[सुमन ताली बजाता है। एक कर्मचारी का प्रवेश]

कर्मचारी—आज्ञा कीजिए।

सुमन—मेरा रथ ले आओ।

कर्म०—अभी आया श्रीमन्! (चला जाता है)

[युवराज को फिर से कुछ नहीं सूझता कि वह इस अपरिचित कुमारी से क्या बातचीत करे। अनेक क्षणों तक दोनों चुपचाप खड़े रहते हैं। उसके बाद सहसा सुमन कहता है।]

सुमन—क्या मैं आपका नाम जान सकता हूं।

कुमारी—मेरा नाम मल्लिका है। (थोड़े-से उत्साह के साथ) परन्तु

इस नाम से मैंने 'भद्र' शब्द का बहिष्कार कर रखा है।

सुमन—बहुत अच्छा नाम है। (जरा उत्साह से आगे बढ़कर) आइए, गंगातट पर खड़े होकर राजमहलों के सूर्यास्त का दृश्य देखिए।

शीला—चलिए!

[दोनों बाहर आकर गंगातट पर खड़े हो जाते हैं। सांझ के अस्त हो रहे सूर्य की गुलाबी किरणें शीला के सुन्दर चेहरे पर पड़ती हैं।]

सुमन—आप राजमहलों में पहले भी कभी आई हैं?

शीला—जी नहीं। बचपन के बाद से मैंने कभी राजमहलों में प्रवेश नहीं किया।

[शरीर-रक्षक का प्रवेश]

शरीर-रक्षक—महाराज, रथ तैयार है।

सुमन—अच्छा, जाओ।

[शरीर-रक्षक चला जाता है।]

सुमन—आइए, मैं आपको रथ तक पहुंचा आऊं।

शीला—मैं आपकी आभारी हूं।

सुमन—मैं कृतार्थ हुआ।

[दोनों बाहर जाते हैं।]

छठा दृश्य

स्थान—कामरूप का जंगल

समय—मध्याह्न

[राजकुमार दिव्य जंगल में शिकार खेलने आए हैं। उनका मन्त्री, जो एक निपुण शिकारी भी है, साथ है। पसीने से लथपथ राजकुमार अपना घोड़ा पकड़े हुए खड़े हैं। मन्त्री अभी घोड़े पर है।]

[illegible]—ओह, कितनी गरमी है!

मन्त्री—शिकार का आनन्द ही जाता रहा। प्रातःकाल आकाश में इतने बादल दिखाई दे रहे थे कि आज का सारा दिन सुहावना रहने की आशा थी।

राज०—सूरज कितनी प्रखरता के साथ तप रहा है!

मन्त्री—आप पसीने से भीग रहे हैं।

राज०—मेरी इच्छा यहां थोड़ी देर आराम करने की है। तुम भी घोड़े से उतर आओ।

मन्त्री—जैसी आपकी आज्ञा। (घोड़े से उतरकर वह दोनों घोड़ों को एक पेड़ के साथ बाँध देता है। तब वे समीप के एक पेड़ की घनी छाया में बैठ जाते हैं।)

राज०—ओह, इतनी दूर तक निकल आए और कोई शिकार हाथ नहीं लगा!

मन्त्री—राजकुमार! वह बारहसिंगा कितना सुन्दर था! मगर हम उसे पकड़ पाते!

राज०—जो हो गया, सो हो गया; जाने दो। बीती बात के बारे में मैं कभी नहीं सोचता।

मन्त्री—समझदार लोग सदा भविष्य के सम्बन्ध में ही सोचा करते हैं।

राज०—नहीं, मैं भविष्य की बात भी नहीं सोचता। जो होगा, देख लिया जाएगा। जो कुछ बाद में होना है, उसके लिए अभी से चिन्ता और सिरदर्दी क्यों की जाए!

मन्त्री—हां जी, सच पूछिए तो मनुष्य को अपने वर्तमान पर पूरा नियन्त्रण रखना चाहिए। वर्तमान वश में हो, तो न तो भूतकाल की स्मृति सताती है, और न भविष्य के बिगड़ने का ही भय रहता है।

राज०—नहीं भाई साहब, तुमने मुझे गलत समझा। मैं वर्तमान की भी चिन्ता नहीं करता। मैं अपनी ओर से कभी कुछ भी करने का प्रयत्न

नहीं करता। जो कुछ होता जाता है, सिर्फ उसीसे बचने की ही फिक्र रखने का प्रयत्न करता हूं।

मन्त्री—जी! और हो भी क्या सकता है!

राज०—सचमुच और कुछ नहीं हो सकता। (खिलखिलाकर हँस पड़ता है) खैर, इन बातों को जाने दो। मुझे बड़ी प्यास मालूम हो रही है मित्र!

मन्त्री—पानी का बरतन तो हम लोगों के साथ है। मगर उसका पानी गरम हो गया होगा। यहीं आसपास कोई झरना हो, तो वहीं से पानी ले आऊं!

राज०—तुम बड़े अच्छे आदमी हो मन्त्री! ज़रा तकलीफ तो करो।

[मन्त्री बरतन लेकर पानी की तलाश में जाता है और राजकुमार अपनी बांसुरी निकालकर बजाने लगते हैं। थोड़ी देर में वे देखते हैं कि बहुत घबराई हुई दशा में मन्त्री महाशय बेतहाशा वापस दौड़े चले आ रहे हैं।]

राज०—(उछलकर खड़े हो जाने के साथ ही साथ) क्या बात है?

[मन्त्री बोलने का प्रयत्न करता है, परन्तु भय कारण उसके मुंह से आवाज़ नहीं निकलती।]

राज०—कुछ बोलोगे भी या बेवकूफों की तरह ताकते ही रहोगे! क्या है, शेर?

मन्त्री—(सिर हिलाकर) नहीं।

राज०—तो और कौन-सी खतरे की बात है? भालू है क्या?

मन्त्री—नहीं।

राज०—(झुंझलाकर) तो आखिर है क्या?

मन्त्री—(बड़े भयपूर्ण स्वर में) कापालिक!

राज०—कापालिक?

[राजकुमार भी घबरा जाते हैं, मगर मन्त्री की तरह वे बदहवास नहीं हो जाते।]

मन्त्री—जी हां।

राज०—किस जगह ?

मन्त्री—यहां से थोड़ी ही दूर पर—उत्तर दिशा में।

राज०—वह कर क्या रहा है ?

मन्त्री—एक सड़ी-गली लाश पर बैठकर वह होम कर रहा है। नर-मुण्डों की माला उसके हाथ में है।

राज०—उसने तुम्हें देखा।

मन्त्री—ज़रा धीरे-धीरे बोलने की कृपा कीजिए! (बहुत ही धीरे से) नहीं जी, उसने मुझे नहीं देखा ?

राज०—उसके पास चलोगे ?

मन्त्री—(घबराकर) कापालिक के पास ? नहीं महाराज ! मैं अभी ज़िन्दा रहना चाहता हूं।

राज०—तुम्हारी इच्छा न हो तो मैं तुम्हें बाधित नहीं करूंगा। मगर मैं वहां अवश्य जाऊंगा।

मन्त्री—आप कापालिक से भी नहीं डरते ?

राज०—डरता क्यों नहीं ? मगर तुम्हारी तरह नहीं। बचपन से इन कापालिकों के भविष्य-ज्ञान के सम्बन्ध में अजीब-अजीब तरह की बातें सुनता आ रहा हूं। आज एक कापालिक को देखने का यह मौका व्यर्थ कैसे जाने दूं ?

मन्त्री—सम्राट् के नाम पर मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप वहां न जाइए।

राज०—तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है मन्त्री। तुम यहीं इन घोड़ों के पास र

[मन्त्री के मना करते रहने पर भी राजकुमार उस ओर चले जाते हैं।]

[दृश्य बदलता है।]

[एक लाश पर कापालिक पद्मासन मुद्रा में बैठा है। चारों ओर नर-मुण्ड तथा हड्डियां बिखरी पड़ी हैं। देखकर तीव्र जुगुप्सा उत्पन्न होती है। फिर भी राजकुमार वहां धैर्यपूर्वक खड़े हुए हैं। उन्होंने देखा कि कापालिक अग्नि में खून और मज्जा की आहुतियां दे रहा है। दोपहर की कड़कड़ाती धूप में भी उसे गर्मी प्रतीत नहीं हो रही।]

कापालिक—(राजकुमार की ओर देखकर) तुम यहां कैसे आए?

राज०—शिकार के लिए।

कापा०—तुम बिन्दुसार के छोटे पुत्र हो न?

राज०—जी हां।

कापा०—तुम्हारा साथी कहां है?

राज०—वह यहां आने से डरता है।

कापा०—(खिलखिलाकर हंसने के बाद) उसका डरना ही ठीक है।

राज०—वह क्यों श्रीमन्!

कापा०—तुम सचमुच सौभाग्यशाली हो। यदि तुम इस व्यवधान-काल में न पहुंचकर अब से एक घड़ी पहले यहां पहुंच गए होते, अथवा आधी घड़ी बाद यहां आते तो मैं तुम दोनों का वध करके इसी होम में आहुति दे डालता। (विकट हंसी)

राज०—आपकी कृपा चाहिए श्रीमन्!

कापा०—कहो, क्या चाहते हो?

राज०—आपका आशीर्वाद।

कापा०—मेरा आशीर्वाद? आशीर्वाद देना मेरा काम नहीं। यह है। कुछ पूछना चाहते हो?

राज०—जी हां।

कापा०—पूछो !

राज०—मेरे बड़े भाई का विवाह कब होगा ?

कापा०—सुमन का विवाह ? उसका विवाह नहीं होगा।

राज०—(घबराकर) यह क्यों श्रीमन् !

कापा०—यह मत पूछो।

राज०—आप भविष्य बता सकते हैं ?

कापा०—अवश्य।

राज०—कुछ बताने की कृपा करेंगे ?

कापा०—कुछ ही दिनों में तुम्हारे पिता का देहान्त हो जायगा और उसके बाद पाटलिपुत्र में खून की नदियां बहेंगी।

राज०—(बहुत अधिक भय के साथ) मेरे देवतास्वरूप बड़े भाई पर तो कोई आपत्ति नहीं आएगी ?

कापा०—यह मत पूछो !

[राजकुमार तिप्य भय से कांपने लगते हैं।]

कापा०—बस, अब चले जाओ। तुमने मेरा यह स्थान देख लिया है, इसलिए मैं अपनी शेष तपस्या कहीं और जाकर करूंगा। यह तुम्हारा सचमुच सौभाग्य था कि तुम अवध्यकाल में मेरे पास पहुंचे।

[राजकुमार प्रणाम करके चल देते हैं।]

कापा०—एक बात सुनो। तुमने अपने सम्बन्ध में तो कुछ पूछा ही नहीं।

राज०—कहिए।

कापा०—तुम जहां रहोगे, सदा प्रसन्न रहोगे।

राज०—और कुछ ?

कापा०—आज से साठ दिन के बाद तुम्हारे मन्त्री का देहान्त हो जाएगा। बस, अब चले जाओ।

[राजकुमार उदास भाव से अपने घोड़ों की ओर लौट चलते हैं। है। क्रमशः यह टोली दूर चली जाती है।]

कापालिक होम में न जाने किस चीज की पूर्णाहुति देता है, जिससे आग में से चटकती हुई बड़ी-सी नीली ज्वाला निकलती है। इसके बाद कापालिक इतनी ओर से खिलखिलाकर हँस पड़ता है कि उसकी वह भयंकर हँसी पर्वत की सम्पूर्ण उपत्यका में गूँज जाती है।]

सातवां दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का नगर-भवन

समय—मध्याह्नपूर्व

[नगर-भवन के आंगन में युवराज के वाग्दान की खुशियां मनाई जा रही है और वहां सैकड़ों नागरिक जमा हैं। आचार्य श्रीवर्धन भी इसी मजमे में बैठे हैं। भवन की छत पर, एक झरोखे में से शीला इस भीड़-भाड़ की ओर देख रही है। वह बिलकुल अकेली ऐसी जगह पर बैठी है, जहां से वह सबको देख सकती है, परन्तु उसे कोई नहीं देख सकता।]

शीला—मुझे यह क्या हो रहा है! मेरी सम्पूर्ण चेतना को जैसे कोई हरता चला जा रहा है। नागरिकों के ये हर्षनाद, ये निरन्तर मंगलवाद्य, यह सजावट, यह चहल-पहल—ये सब मुझे उन्मत्त-सी बना रही है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मैं आपे में नहीं हूं। मैं अपनी सुध-बुध खो रही हूं। मगर इस तरह सुध-बुध खोने में भी कितना आनन्द है! ओह, कितना बड़ा आनन्द है! सभी ओर पूर्णता ही पूर्णता प्रतीत हो रही है। हे प्रभु, तेरी सृष्टि में इतना सुख भरा हुआ है! सुख की मोहकारिणी अनुभूति है!

[सहसा सामने के राजमार्ग पर मंगलवाद्य बजाते हुए नागरिकों की एक टोली दिखाई देती है। शीला प्रसन्नता से गद्गद हो रहे हृदय के साथ उस टोली की ओर देखती रह जाती है। क्रमशः वह टोली दूर चली जाती है।]

शीला—(फिर से सोचने लगती है) मेरे पिताजी आज कितने प्रसन्न । वे किस तरह सभी के साथ खूब हँस-हँस कर बातें कर रहे हैं। मैंने आज तक उन्हें इतना प्रसन्न कभी नहीं देखा।···मैं सचमुच कितनी भाग्यशालिनी हूं! मेरी सहेलियां कहती हैं कि तुम इस मगध महा-राज्य की भावी सम्राज्ञी हो, ओह, सचमुच यह कितना बड़ा सम्मान बचपन में राजा-रानी की कहानियां सुनकर कितनी ही बार रानी ने को जी चाहा है। मगर कभी यह स्वप्न मे भी नहीं सोचा था कि किसी दिन अनायास ही इस महासाम्राज्य की सम्राज्ञी बन सकूंगी। और वे ? यह सम्पूर्ण साम्राज्य उनके व्यक्तित्व के सम्मुख नितान्त है! आहा, मैं सचमुच अत्यन्त सौभाग्यशालिनी हूं। प्रभो, मेरा अतुलनीय सुख, मेरा यह महासौभाग्य क्या तुम बनाए रख सकोगे ? कितने महान् हैं और मैं उनकी तुलना मे कितनी तुच्छ, कितनी य हूं। मेरी सखियां कहती हैं कि तुम्हारे समान रूपवती कन्या पाटलिपुत्र मे दूसरी नहीं है। मगर उनकी तुलना मे मेरा यह दर्य किसी भी मूल्य का नहीं है। मैं चाहती हूं कि मैं इससे अपेक्षा भी हों गुना अधिक सुन्दरी होती और अपना वह सारा सौन्दर्य अपने इस ा के चरणों पर न्योछावर कर देती। मेरे देवता! ओह, क्या तुम सुच मेरे हो ? प्रभो, यह कितना अपार हर्ष है!

[सहसा आचार्य दीपवर्धन का प्रवेश। वे चुपचाप पीछे से आकर शीला की आँखें बन्द कर लेते हैं।]

शीला—(चौंककर) पिताजी !

दीपवर्धन—उंह, इतनी जल्दी पहचान लिया ! सब मजा किरकिरा हो गया। अच्छा, तो बेटी, यहां कोने में क्या हो रहा है ?

शीला—मेरी सहेलियां मुझे तंग करती थीं, छेड़ती थीं, इससे मैं यहां आकर बैठ गई।

दीप०—अभी से तुमने साम्राज्ञियों के ठाट-बाट शुरू कर दिये। देखो न, द्वार पर चार शरीर-रक्षिकाएं खड़ी पहरा दे रही हैं। किसी को अन्दर नहीं आने देतीं।

शीला—फिर आप यहां कैसे आ गए ?

दीप०—आखिर मैं भी तो सम्राज्ञी का पिता हूं।

शीला—हटिए, मैं आपके साथ नहीं बोलूंगी।

दीप०—वाह, वाह, अभी से यह हाल है।

शीला—(अपने पिता के कंधों से लिपटकर) आप तो मुझे नहीं भुला देंगे, पिताजी ?

दीप०—यह क्या कहती हो बेटी ?

शीला—पिताजी ! (दोनों हाथों से मुंह छिपा लेती है) मैं आपसे कभी जुदा नहीं हो सकूंगी।

दीप०—पिता का हृदय तुम जानती हो शीला! फिर मैं तो तुम्हारी माता की जगह भी था। तुम्हें छोड़कर मेरे पास और है ही क्या ? जानती हो बेटी, मेरे हृदय में दो विभिन्न भागों के तूफान-से उठ खड़े हुए हैं। एक अनुभूति आग की लपटों के समान गरम है और दूसरी वर्षा की बौछारों के समान शीतल। हे विधाता, पिता को तुमने यह कैसा हृदय दिया है। (क्षण-भर के लिए रुककर) अपने इस बूढ़े बाप को भुला तो न दोगी बेटी ?

गले में हाथ डालकर) पिताजी !

दीप०—अच्छा शीला, एक बात का जवाब मुझे सच-सच देना। युवराज को तुम पसन्द करती हो।

शीला—यह बात भी कहने की आवश्यकता है पिताजी !

दीप०—तो बस बेटी, मैं समझता हूं कि मेरा जन्म सफल हो गया। हे ईश्वर, यह कितना तीव्र सुख है (प्रायः साथ ही साथ) और सन्तान वियोग की यह कैसी तीव्र-सी जलन है !

[इसी समय पांच-छः सहेलियां वहां आ पहुंचती हैं। चहल-पहल मच जाती है।]

पटाक्षेप

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—वैशाली प्रान्त में आचार्य उपगुप्त का आश्रम

समय—प्रभात

[आश्रम के आंगन में कुछ बौद्ध भिक्षु बैठकर गा रहे हैं, एक अन्धा बालक भी इनमें है। एक तरफ बैठे आचार्य उपगुप्त यह गीत सुन रहे हैं।]

गीत

खोल बन्धु ! हृदय-द्वार, प्रेम किरण आई,
आज स्वर्ग सदृश भुवन दिव्य ज्योति छाई।
चिरप्रबुद्ध शाक्ति एक ज्ञान-दीप लाई,
गमन-पंथ देख मनुज; देख कूप खाई।
द्वेष-दम्भ-निरत हाय, आयु सब गंवाई,
देख तनिक दया दान—प्रेम की निकाई।
व्यर्थ विषय जग-प्रपंच, करो कुछ भलाई,
कौन ऊंच जगत् बीच, नीच कौन भाई।
मिटी मोह-निशा, आज उषा मुसकराई,
कनक-रुचिर पूर्व लोक प्रकृति जगमगाई।
धन्य शाक्य मुनि उदार दया जिन्हें पाई,

प्रेम-करुण शान्तिमयी त्रिपथगा बहाई।
स्नान करो तीर्थ-सलिल हे अजान भाई!
मिटें दुःख-ताप त्रिविध, हटे कलुष-काई।

उपगुप्त—(अन्धे बालक से) मेरे निकट आओ बेटा!

[बालक आचार्य उपगुप्त के सामने लाया जाता है।]

उपगुप्त—वत्स, तुम्हारा यहाँ जी लगा या नहीं?

बालक—इतना सुख तो मुझे आजीवन कभी नहीं मिला भगवन्!

उपगुप्त—तुम्हारा स्वर बड़ा मधुर है। संगीत का अभ्यास करोगे?

बालक—जैसी आपकी आज्ञा पिताजी!

उपगुप्त—तुम्हें अपने मां-बाप की याद है?

बालक—मैं अनाथ हूं भगवन्! अपनी माता की मुझे याद है, परन्तु उनसे बिछुड़े भी अब बहुत समय हो गया।

उपगुप्त—(बालक के सिर पर हाथ रखकर) इस आश्रम को अपना घर समझो और हम सबको अपना बन्धु-बान्धव।

[एक भिक्षु का प्रवेश]

भिक्षु—(प्रणाम करके) भगवन्, पुष्पपुर के बौद्ध-विहार से संघ स्थविर का दूत आया है।

उपगुप्त—पुष्पपुर से? पुष्पपुर तो यहां से करीब ८०० कोस होगा। पुष्पपुर से दूत आया है?

भिक्षु—जी हां, श्रीमन्! और वह इसी समय आपके दर्शन करना चाहता है।

उपगुप्त—उन्हें सम्मान के साथ यहाँ ले आओ। मगर ठहरो, मैं स्वयं चलकर उनका स्वागत करता हूं।

[भिक्षु के साथ उपगुप्त का प्रस्थान]

एक भिक्षु—(अन्धे बालक से) यह तुम्हारा महान् सौभाग्य है कि

आचार्य की तुम पर कृपा है। तुम्हारा जन्म सफल हो गया !

दूसरा भिक्षु—आचार्य की कृपा किस पर नहीं है ?

पहला भिक्षु—मगर तुम शायद इस अन्धे बालक की आपबीती नहीं जानते। यह बे-मां-बाप का बालक समीप के किसी गांव में भीख मांग कर अपना निर्वाह किया करता था। कुछ ही दिन पहले की बात है कि इसे अचानक चेचक निकल आई। किसी ग्रामवासी ने इसकी खोज-खबर नहीं ली। आचार्यवर अचानक वहाँ पहुंचे और इसके रोगी देह को स्वयं अपने कन्धों पर उठाकर आश्रम में ले आए। यहाँ उन्होंने इसकी चिकित्सा में दिन-रात एक कर दिया। तब जाकर यह बालक बच पाया है। नहीं तो सब वैद्य जवाब दे ही चुके थे। चेचक से इसकी आँखें जाती रहीं, परन्तु इसका जीवन बच गया।

[सहसा उस बालक की अन्धी आँखों में कृतज्ञता के दो आँसू चमक आते हैं। इसी समय आचार्य उपगुप्त पुष्पपुर के दूत के साथ वहां प्रवेश करते हैं। बालक की आँखों में आँसू देखकर वे बड़े स्नेह के साथ उसके सिर पर हाथ रख कर पूछते हैं।]

उपगुप्त—बेटा, यह क्या ? तुम्हारी आँखों में आंसू क्यों भर आए ?

बालक—(आचार्य के चरणों में सिर झुकाकर) कुछ नहीं पिताजी !

उपगुप्त—अच्छा पुत्रो, तुम लोग अब जाओ।

[सबका प्रस्थान]

उपगुप्त—आपका साहस धन्य है।

दूत—यह सब आपके आशीर्वाद का फल है।

उपगुप्त—मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

दूत—जी नहीं, कोई कष्ट नहीं हुआ।

उपगुप्त—स्थविर महोदय ने मेरे लिए क्या सन्देश भेजा है ?

दूत—(चारों ओर देखकर) वह बहुत गोपनीय है।

उपगुप्त—आप कोई चिट्ठी लाए हैं ?

दूत—जी नहीं, स्थविर महोदय ने चिट्ठी लिखकर भेजना सुरक्षित नहीं समझा, कुछ ऐसी ही बात थी। हां, विश्वासपात्रता सिद्ध करने के लिए यह पट्ट मैं अपने साथ लाया हूं। (पट्ट दिखाता है।)

उपगुप्त—मैं जानता हूं कि आप विश्वासपात्र हैं। कहिए, क्या बात है ?

दूत—भगवन्, पुष्पपुर का क्षत्रप बौद्धसंघ पर भयंकर अत्याचार कर रहा है। सम्राट् की आज्ञा के प्रतिकूल हम लोगों के साथ वहां शत्रुओं के समान व्यवहार किया जाता है।

उपगुप्त—तुमने पाटलिपुत्र तक अपनी शिकायत नहीं पहुंचाई ?

दूत—क्यों नहीं भगवन्, परन्तु हमारी कहीं सुनाई नहीं होती। क्षत्रप पाटलिपुत्र में प्रति सप्ताह अपने प्रान्त के जो समाचार भेजता है, उनमें लिख देता है कि बौद्धसंघ विद्रोहियों की संस्था है, इन में चोर, डाकू और छिपे अपराधियों का प्राधान्य है। इसपर भी सिर्फ सम्राट् के भय से ही वह हमारे केन्द्रीय बौद्धसंघ के विरोध में अभी तक कोई कार्यवाही नहीं कर सका। परन्तु इसका यह परिणाम अवश्य हुआ है कि हम लोगों की कहीं सुनवाई नहीं होती।

उपगुप्त—संघ-स्थविर का क्या विचार है ?

दूत—(कुछ घबराकर) यही बात तो वास्तव में गोपनीय है आचार्य !

उपगुप्त घबराओ नहीं। यहां और कोई तुम्हारी बात नहीं सुन रहा।

दूत—(धीरे-धीरे) उनका विचार है कि जब हमें विद्रोही समझा ही जा रहा है, तो क्यों न हम सचमुच विद्रोह का झण्डा खड़ा कर ही दें। इस राज्य से सुशासन प्राप्त करने का यही एक उपाय है। तक्षशिला

वालों ने विद्रोह किया था, परिणाम यह हुआ कि आज तक्षशिला साम्राज्य का सबसे अधिक सुशासित और सुखी प्रान्त बना हुआ है। हम लोग भी विद्रोह करेंगे। जो कुछ होगा, देखा जाएगा।

उपगुप्त—तो मेरे पास किस उद्देश्य से आए हो।

दूत—आचार्य, आप बौद्धधर्म के महानायक हैं। आपकी अनुमति और सहायता के बिना हम लोग यह दुस्साध्य कार्य कैसे कर सकते हैं ?

उपगुप्त—देखो भाई, मेरी राय में तो इससे बढ़कर बुरा काम दूसरा हो ही नहीं सकता।

दूत—(चौंककर) यह आप क्या कहते हैं भगवन् !

उपगुप्त—मुझे आश्चर्य है कि स्थविर महोदय को यह बात सूझी ही किस तरह। और उससे भी बढ़कर आश्चर्य इस बात का है कि इस कार्य में मुझसे सहायता प्राप्त करने की आशा उन्हें कैसे हुई ?

दूत—फिर आपकी क्या राय है आचार्य ?

उपगुप्त—मेरी तो एक ही राय है। आप लोगों को सच्चे बौद्धों के समान भगवान् तथागत के आदेशों का पालन करना चाहिए।

दूत—वह क्या ?

उपगुप्त—वह यही कि लड़ना-भिड़ना भिक्षुओं का काम नहीं है। यह काम नागरिकों का है। भिक्षु का कर्तव्य है कि वह कभी किसी भी दशा में किसी से नाराज न हो। किसी भी परिस्थिति में प्रतिशोध की भावना उसके मन में न आए।

दूत—तो भगवन्, आप क्या करने को कहते हैं ?

उपगुप्त—मेरी राय तो यही है कि आप लोगों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें सहन करके भी लोकसेवा का कार्य निरन्तर जारी रखना ही एकमात्र कर्तव्य है।

दूत—आचार्य, क्षत्रप के सैनिक भिक्षुओं का अपमान करते हैं।

उपगुप्त—उन्हें, वे जैसा चाहें, करने दो।

दूत—आचार्य, क्षत्रप बौद्धों का बहिष्कार करवा रहा है।

उपगुप्त—अपने को कभी बहिष्कृत मत समझो, तब कोई तुम्हारा बहिष्कार न कर सकेगा।

दूत—आचार्य क्षत्रप ने अनेक बौद्ध आश्रम गिरवा दिए हैं।

उपगुप्त—इसकी परवाह मत करो।

दूत—तो फिर आखिर करें क्या ?

उपगुप्त—भगवान् बुद्ध के आदेशों का पालन।

दूत—वह किस तरह ?

उपगुप्त—अच्छा तुम्हीं बताओ कि तुमने ये पीत वस्त्र क्यों धारण किए हैं ?

दूत—अपने कल्याण तथा लोक का उपकार करने के लिए।

उपगुप्त—किस 'लोक' का उपकार करने के लिए ?

दूत—यही सम्पूर्ण प्राणी-जगत्।

उपगुप्त—तुम्हारे इस 'लोक' में वे लोग भी तो शामिल हैं न, जिन्हें तुम अपना शत्रु समझते हो ?

दूत—जी हां, भगवन् !

उपगुप्त—तो उनका वध करके तुम किस तरह उनका उपकार करोगे ?

दूत—यह तो आपत्काल का प्रश्न है प्रभो !

उपगुप्त—आपत्काल ! हां, तुम ठीक कहते हो। भगवान् तथागत के अनुयायियों पर आपत्काल आ रहा है। मैं देख रहा हूं कि राजकुमार अशोक की शक्ति तथा अधिकार-लोलुपता बढ़ रही है और बौद्धों पर उसका असीम क्रोध है। परन्तु इस दशा में भी तुम्हें दयापूर्ण और सहनशील बनकर रहना होगा। भिक्षु के लिए एकमात्र यही मार्ग है और

मार्ग उसके लिए बन्द हैं। सच्चा भिक्षु वही है, जो क्रोध को अपनी म शान्ति से विजय करता है, जो असाधु को अपनी साधुता के बल वश में लाता है, जो अत्याचारी का मुकाबला अपनी अखण्डित दया करता है।

दूत—जो आपकी आज्ञा!

उपगुप्त—जाओ, स्थविर महोदय से कह दो कि वे आदर्श भिक्षु कर दिखाएं। उन पर जो अत्याचार हो रहे हैं उन्हें सहन करें और ुष्य-मात्र के लिए अपने हृदय में स्नेह और दया के भाव रखें।

दूत—जैसी आपकी आज्ञा श्रीमन्!

उपगुप्त—चलो, तुम्हें विश्रामगृह तक पहुंचा आऊं।

[दोनों का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—गंगा नदी का राजकीय घाट

समय—सांझ

[युवराज सुमन राजवैद्य के साथ खड़े होकर बातें कर रहे हैं। प्रतीत होता है कि बातचीत में घूमते-घामते वे यहां आ पहुंचे हैं।]

युवराज—आपका क्या विचार है?

वैद्य—मैं निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कह सकता युवराज!

युवराज—पिताजी अबके इतना घबरा क्यों गए हैं।

वैद्य—यही तो सबसे बड़ी कठिनाई है?

—मैंने आजतक उन्हें इतना कभी नहीं देखा। इससे पहले भी क बार बीमार पड़ चुके हैं।

युवराज—सच बात तो यह है कि आसार अच्छे नहीं हैं। आप कहें तो और वैद्यों की भी राय ले ली जाए।

वैद्य—मैं स्वयं आपसे यही कहनेवाला था।

युव०—अच्छा, तो आज रात को मैं इस कार्य के लिए चिकित्सकों की एक समिति नियुक्त कर दूंगा।

वैद्य—एक आवश्यक बात यह है कि सम्राट् के सम्मुख अब कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए, जिससे उन्हें किसी भी तरह की चिन्ता हो जाने का अवसर हो। यह हृद्रोग है। इसमें रोगी की परिचर्या विशेष सावधानी के साथ करनी चाहिए।

युव०—आपके आदेशों का पालन पूर्ण रूप से किया जाएगा। आप बता सकेंगे कि सूर्यास्त में अब कितना समय बाकी है?

वैद्य—करीब एक-चौथाई घड़ी।

युव०—अच्छा, तो अब आप जा सकते हैं।

वैद्य—नमस्कार! (प्रस्थान)

[युवराज सीढ़ियां उतरकर नदी के जल के निकट जा बैठते हैं। नदी का तरंगित जल उछल-उछलकर सीढ़ियों को भिगो रहा है। रह-रहकर युवराज पर भी उसके छींटे पड़ने लगते हैं।]

युव०—मैंने उसे यही समय तो दिया था और इसी घाट पर आने के लिए कहलवाया था। वह अभी तक आई क्यों नहीं! यह क्या! पश्चिम दिशा से बादलों की यह विशाल राशि बड़ी शीघ्रता से सम्पूर्ण आकाश पर अधिकार करती जा रही है। मालूम होता है, आंधी आनेवाली है।

[इसी समय घाट के ऊपर शीला दिखाई देती है। लज्जा से उसका सुन्दर चेहरा लाल हो उठा है। घाट तक पहुंचकर वह चुपचाप खड़ी हो जाती है।]

युव०—इधर आ जाओ शीला!

[शीला मुस्कराकर युवराज को प्रणाम करती है।]

युव०—(प्रणाम का जवाब देकर) मैंने तुम्हें एक विशेष उद्देश्य से यहां बुलाया था।

शीला—जी !

युव०—तुम्हें पिताजी की बीमारी का समाचार ज्ञात है न ?

शीला—पर सुना था कि यह बीमारी चिन्ताजनक नहीं है।

युव०—नहीं शीला, वैद्यों की राय ऐसी नहीं है।

शीला—(ज़रा चिन्ता के साथ) अच्छा।

युव०—मैं चाहता था कि सम्राट् की सेवा-शुश्रूषा का भार तुम्हीं अपने कन्धों पर ले लो।

शीला—इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझूंगी।

युव०—परन्तु इससे पूर्व क्या यह आवश्यक नहीं होगा कि बिना किसी विशेष समारोह के हम दोनों का विवाह हो जाए ?

शीला—जैसा आप उचित समझें, मैं वैसा ही करूंगी।

युव०—परन्तु पिताजी यह कैसे स्वीकार करेंगे कि इस विवाह में धूमधाम ज़रा भी न होने पाए।

शीला—उनसे पूछकर मालूम कर लीजिए।

[हवा तेज़ होकर चलने लगती है।]

युव०—तेज़ आंधी आ रही है शीला !

शीला—जी हां युवराज ! (क्षण-भर बाद) इन दिनों बहन विभा को भी यहां बुला लेना क्या उचित न होगा ?

युव०—बिलकुल ठीक है। मैं कल ही उन्हें संदेश भिजवा दूंगा।

[सहसा आंधी बड़े वेग से चलने लगी है।]

सुमन—(शीघ्रता [illegible] साथ खड़े होकर) शीला ! यह आंधी साधारण आंधी नहीं है ! चलो अन्दर चलें।

शीला—चलिए !

[एकाएक आंधी का वेग और भी बढ़ जाता है। कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता। उस अंधकार में दो छाया-मूर्तियां महल की ओर बढ़ती दिखाई देती हैं।]

कुणाल—शीला!

शीला—युवराज!

युव०—तुम कहां हो शीला? मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता!

शीला—आर्य! प्राणनाथ!! तुम कहां हो?

तीसरा दृश्य

स्थान—तक्षशिला का राजमहल

समय—रात्रि का पहला पहर

[अशोक की पत्नी रानी तिषी (तिष्यरक्षिता) महल के फाटक के निकट ही संगमरमर के ऊंचे चबूतरे पर कोहनी टेककर खड़ी है। उसकी दृष्टि फाटक की ओर है।]

तिषी—नहीं आए; अभी तक नहीं आए। घण्टों से मैं उनकी प्रतीक्षा [कर रही हूं]। आज सारा दिन वे इस ओर नहीं आए। जी चाहता है, वे हर समय पास बैठे रहें, वे कभी मेरी नज़रों से ओझल न हों। मगर नहीं, हजारों काम रहते हैं। वे मेरी तरह निठल्ले तो नहीं हैं। हम स्त्रियां [कि]तनी भी कितनी स्वार्थी हैं! वे ठीक ही तो कहते हैं, तुम स्त्रियों को [कुछ] भी करना नहीं आता। मगर मैं भी क्या करूं, मेरा जी नहीं मानता। [देखती] हूं, सन्ध्या होने न होते मेरे बाग की मालिन की कुटिया में जब [दीपक] जलने लगता है, तो उसका माली भी वहीं आकर बैठ जाता है। [जी चाह]ता है, क्या कभी हमारा जीवन भी इतना निश्चिन्त और इतना [सुखी] ही रहेगा, जब उनके सम्मुख सिर्फ मैं ही मैं होऊंगी और कोई

चिन्ता न होगी, और कोई कर्तव्य न होगा।

[इसी समय राजमहल की दीवार के बाहर से गाने का मधुर स्वर सुनाई पड़ता है। परन्तु उसी समय··· ।]

पहरेदार—कौन गा रहा है?

[दो भिक्षु निकट आ जाते हैं]

पहरेदार—तुम्हें मालूम नहीं कि यह राजमहल है और यहां मचाना मना है।

भिक्षु—जी नहीं! हम परदेसी हैं।

पहरेदार—अच्छा, तो जरा मेहरबानी करके यहां से दूर चले जा

रानी—(जरा ऊंची आवाज से) पहरेदार! इन्हें अन्दर आने

पहरेदार—जो आज्ञा! (भिक्षुओं से) अन्दर आ जाइए। मा महारानी ने बुलाया है।

[दोनों भिक्षु रानी के निकट आकर उन्हें प्रणाम करते हैं।]

रानी—तुम लोग कहां से आ रहे हो?

भिक्षु—पाटलिपुत्र से।

रानी—कहां जाओगे।

भिक्षु—पुष्पपुर।

रानी—तुम्हारा स्वर बड़ा मधुर है भिक्षुओ! क्या मुझे वही ग कर सुना सकोगे, जो तुम लोग अभी गा रहे थे?

भिक्षु—बड़ी प्रसन्नता से। हमारा काम ही यही है महारानी तीनों भिक्षु इकतारे के साथ गाते हैं)

गीत

नदी के किनारे खड़ा किसका घर है,
पड़ा नींद में कौन तू बेखबर है।
अरे बसने वाले जरा झांक बाहर,

बढ़ी जा रही नीर-सम यह उमर है।
जरा की उदासी न यौवन का मद है,
न जीवन के ढलने की तुमको फिकर है।
पड़ा रह अनोखे मुसाफिर मजे में,
तुझे साथ मेरे न चलना उधर है।
यह निस्पन्द रजनी सहम कर खड़ी है,
न जाने कहाँ घाट रस्ता किधर है?
घिरे मेघ बिजली तड़पने लगी है,
उठा कैसा तूफान—कैसी लहर है!
प्रलय खेल में लीन आकाश-धरती,
सुलगता हृदय किन्तु मेरा इधर है।
इसी द्वन्द्व को लाँघकर मैं चलूँगा,
न मुझको हिचक या किसीका ही डर है।
क्षणिक काल दो दीप उस पार पाकर,
न मेरे निकट विष, प्रलय है, भँवर है।

रानी—आहा, तुम्हारा यह संगीत कितना मधुर है! एक बार जरा फिर से सुनाओ।

[दोनों भिक्षु फिर वही गाना शुरू करना ही चाहते हैं कि इतने में राजकुमार अशोक आ जाते हैं।]

अशोक—भिक्षुओ, चुप हो जाओ!

[दोनों भिक्षु घबराकर चुप रह जाते हैं। रानी पीड़ित-सी हो उठती है।]

अशोक—(भिक्षुओं से) तुम्हें यहाँ आने किसने दिया?

रानी—मैंने ही इन्हें अपने पास बुला लिया था नाथ! आज रात ये लोग राजमहल में ही रहेंगे।

अशोक—पहरेदार !

पहरेदार—(समीप आकर) आज्ञा कीजिए !

अशोक—इन्हें विश्रामगृह में ले जाओ।

[तीनों भिक्षुओं का घबराई हुई-सी दशा में पहरेदार के साथ प्रस्थान]

रानी—इनका गीत बड़ा मधुर और करुण है नाथ !

अशोक—मैं इन बौद्ध भिक्षुओं से घृणा करता हूं तिषी !

रानी—वह क्यों ?

अशोक—निठल्ले कहीं के, दुनियां-भर को निष्कर्मण्यता का पाठ पढ़ाते फिरते हैं। मेरा बस चले तो इनका सड़कों पर इस तरह गाते फिरना बन्द ही कर दूं।

रानी—नाथ, आज आप सारा दिन कहां रहे ?

अशोक—आज काम ज़रा अधिक था। हां तिषी, तुम्हें पाटलिपुत्र का समाचार मिला है ?

रानी—कोई नया समाचार तो मैंने नहीं सुना।

अशोक—सम्राट् बीमार हैं।

रानी—ओ हो !

अशोक—और वैद्यों की राय है कि उनकी दशा चिन्ताजनक है।

[रानी के मुंह पर गहरी चिन्ता के भाव दिखाई देने लगते हैं।]

अशोक—समझ में नहीं आता कि भविष्य में क्या होने वाला है।

रानी—सम्राट् की सेवा-शुश्रूषा के लिए मुझे पाटलिपुत्र भिजवा दीजिए। राजकुमारी चित्रा भी तो आजकल पाटलिपुत्र में नहीं है।

अशोक—तुम लोगों को मोह और व्यर्थ की चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। जानती हो, मैं क्या सोच रहा हूं ?

रानी—(उदास भाव से) क्या ?

अशोक—मैं सोचता हूं, सुमन बड़ा सौभाग्यशाली है कि वह इन

दिनों पाटलिपुत्र में है।

रानी—हां, इसमें क्या सन्देह है। उन्हें पिताजी की सेवा करने का यह अवसर मिलेगा।

अशोक—इसलिए नहीं तियो! मगर इसलिए कि यदि सम्राट् का देहान्त हो गया तो पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर वह अपना अधिकार जमा लेगा।

रानी—(उत्तेजनापूर्ण घबराहट के साथ) इसमें अनौचित्य ही क्या होगा नाथ! आखिर साम्राज्य के युवराज भी तो वही है।

अशोक—मैं यह सब कुछ नहीं मानता! इस दुनिया में सिर्फ कुछ समय पहले आ जाने के कारण सुषम तो सम्राट् बन जाए और मैं राज्य-संचालन की योग्यता में उसकी अपेक्षा कई गुणा अधिक निपुण होते हुए भी सारी उम्र उसकी नौकरी बजाऊं, यह मुझसे सहन न होगा!

रानी—यह पाप-विचार छोड़ दो प्यारे!

अशोक—मुझे तुमसे पहले भी यही आशा थी। क्या तुम सचमुच सम्राज्ञी बनना नहीं चाहती?

रानी—मुझे तो सिर्फ तुम्हारे हृदय का साम्राज्य ही चाहिए मेरे नाथ!

अशोक—यह कैसी कायरता है! तुम लोगों की इसी भीरुता के कारण ही तो स्त्री-जाति बदनाम है।

रानी—मेरी विनती सुनो मेरे नाथ! हम लोग यहां तक्षशिला में क्या कुछ कम प्रसन्न हैं? इससे अधिक हमें और क्या चाहिए!

अशोक—मूर्ख मत बनो। इन बातों में दखल देना तुम्हारा काम नहीं है। मुझे ज़रा एक काम से मन्त्रणागृह में जाना है। (प्रस्थान)

रानी—नाथ, मेरे प्यारे, सुनो। मेरी एक बात सुनो।

[अशोक तेज़ी से बढ़ता चला जाता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के राजमहलों में चित्रा का कमरा

समय—मध्याह्नपूर्व

[चित्रा अपने कमरे में बैठी हुई शीला की प्रतीक्षा कर रही है। उसकी प्रधान अंगरक्षिका वहीं मौजूद है।]

चित्रा—शीला अभी तक नहीं आई ! जरा किसी और को तो उनके पास भेजना।

अंगरक्षिका—इसी थोड़े-से समय में आठ एक-एक करके पांच संदेशवाहकों को उनके पास भेज चुकी हूँ। अब एक और को भेजने से क्या लाभ होगा राजकुमारी !

चित्रा—फिर वे अभी तक आई क्यों नहीं ? अभी-अभी मुझे पिताजी के पास परिचर्या के लिए जाना है। तुम स्वयं वहां क्यों नहीं चली जाती ?

अंग०—आपको यह हो क्या गया है राजकुमारी ! आज प्रातः ही आप इतना लम्बा सफर करके यहां पहुंची हैं। आते ही आप सम्राट् के पास चली गईं। वहां से लौटीं तो अब यह धुन सवार हो गई है। आप जरा नहा-धोकर कुछ आराम तो कर लीजिए।

चित्रा—मेरे जी की दशा तुम क्या समझोगी ! ओह, तुम्हें नहीं मालूम, जब मैंने कामरूप में सुना कि मेरे भाई ने अपनी जीवनसंगिनी का चुनाव कर लिया है, तब जी में आया कि मेरे पंख क्यों न हुए, जिनकी सहायता से मैं उड़कर पाटलिपुत्र पहुंच जाऊं और अपनी भावी भाभी का मुंह देख पाऊं। मेरे भाई साहब को तुम नहीं जानती। वे मनुष्य नहीं, देवता हैं। मेरा खयाल था कि उनके योग्य नारी इस पृथ्वी पर कोई नहीं होगी। जरा देखूं तो, वह कौन सौभाग्यशालिनी कुमारी है, जिसे मेरे भाई के हृदय का स्नेह प्राप्त हुआ है।

[शीला का प्रवेश]

मंग०—(आगे बढ़कर) आप ही···

चित्रा—(बीच ही में) तुम्हें परिचय देने की आवश्यकता नहीं। तुम जाओ।

[चित्रा आगे बढ़कर शीला का हाथ पकड़ लेती है। एक क्षण तक वह पूरी तन्मयता के साथ शीला का मुंह देखती रहती है। इसके बाद वह उसे गले से लगा लेती है। चित्रा की आंखों में आनन्द के आंसू भर आते हैं।]

चित्रा—(अर्ध-स्वगत) तुम ! तुम ! तुम ! ठीक है तुम्ही मेरे भाई के लिए उपयुक्त जीवन-सहचरी सिद्ध हो सकोगी। तुम उनको प्रसन्न रख सकोगी।

शीला—आप आज ही आ रही हैं ?

चित्रा—देखो बहन, मुझे आप मत कहो। वे मुझसे बड़े हैं और तुम मुझसे छोटी हो, इसलिए मैं तुम्हे अपने बराबर का ही समझूंगी। मुझे तुम अपनी बराबर की बहन समझो।

[शीला का हृदय प्रसन्नता से गद्‌गद हो जाता है। वह चित्रा का हाथ कसकर पकड लेती है।]

शीला—यह मेरा परम सौभाग्य है दीदी !

चित्रा—हां वह भी ठीक है। देखो बहन, तुम बड़ी निठुर हो। मैं जब से यहां पहुंची हूं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हू और तुम इतनी देर करके आई।

शीला—इसमें मेरा दोष नहीं है दीदी ! तुम्हारे आने की बात मुझे मालूम ही न थी। पिताजी के पास हो आई हो।

चित्रा—हां, यहां पहुचते ही मैं उनके पास गई थी। राजवैद्य ने यही कहा है कि चिन्ता की कोई बात नहीं। एक बात का जवाब दोगी ?

[शीला का प्रवेश]

मंग०—(आगे बढ़कर) आप ही···

चित्रा—(बीच ही में) तुम्हे परिचय देने की आवश्यकता नहीं। तुम जाओ।

[चित्रा आगे बढ़कर शीला का हाथ पकड़ लेती है। एक क्षण तक वह पूरी तन्मयता के साथ शीला का मुंह देखती रहती है। इसके बाद वह उसे गले से लगा लेती है। चित्रा की आंखों में आनन्द के आंसू भर आते हैं।]

चित्रा—(अर्ध-स्वगत) तुम! तुम! तुम! ठीक है तुम्ही मेरे भाई के लिए उपयुक्त जीवन-सहचरी सिद्ध हो सकोगी। तुम उनको प्रसन्न रख सकोगी।

शीला—आप आज ही आ रही हैं?

चित्रा—देखो बहन, मुझे आप मत कहो। वे मुझसे बड़े हैं और तुम मुझसे छोटी हो, इसलिए मैं तुम्हें अपने बराबर का ही समझूंगी। मुझे तुम अपनी बराबर की बहन समझो।

[शीला का हृदय प्रसन्नता से गद्गद हो जाता है। वह चित्रा का हाथ कसकर पकड़ लेती है।]

शीला—यह मेरा परम सौभाग्य है दीदी!

चित्रा—हां वह भी ठीक है। देखो बहन, तुम बड़ी निठुर हो। मैं कब से यहां पहुंची हू, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही [illegible] और तुम इतनी देर करके आई।

शीला—इसमे मेरा दोष नहीं है दीदी! तुम्हारे [illegible] मुझे मालूम ही न थी। पिताजी के पास हो आई हो।

चित्रा—हां, यहां पहुंचते ही मैं उनके पास गई थी [illegible] रायबंद ने यही कहा है कि चिन्ता की कोई बात नहीं [illegible] एक बात का जवाब दोगी? [illegible]

शीला—पूछो !

चित्रा—मगर जवाब बिना कुछ भी सोचे-विचारे एकदम दे देना होगा। तुम एक क्षण भर भी रुक गईं, अथवा तुमने सोचकर जवाब देने का प्रयत्न किया तो वह अपशकुन हो जाएगा। समझीं न ?

शीला—मैं एकदम जवाब दे दूंगी।

चित्रा—अच्छा बताओ, पिताजी की इस बीमारी में कोई खतरा तो नहीं है ?

[सहसा शीला घबरा-सी जाती है।]

शीला—(दो-तीन क्षणों के बाद) मेरा खयाल है कि···

चित्रा—(बीच में रोककर) बस, अब जवाब देने की जरूरत नहीं रही।

[दोनों के मुंह पर उदासी दिखाई देने लगती है और कुछ क्षणों तक दोनों चुपचाप बैठी रहती हैं।]

चित्रा—(बात बदलने की इच्छा से) देखो न, भाई साहब में अभी से कितना अन्तर आ गया है। मुझसे कहा करते थे कि तुम्हें छोड़कर दुनिया में मैं और किसी को नहीं जानता और आज, मुझे पाटलिपुत्र आए एक प्रहर बीत गया और उन्होंने अभी तक दर्शन ही नहीं दिए।

शीला—अच्छा बहन, बताओ, तुम उन्हें इस बात की क्या सजा दोगी ?

चित्रा—क्यों, अभी से सजा देने के ढंग भी सीख लेना चाहती हो ! (मुस्कराहट)

शीला—(जरा लज्जित-सी होकर) आखिर वे बहन ही के तो भाई हैं !

चित्रा—अच्छा बहन, एक बात बताना। वे तुम्हें कितना चाहते हैं ?

[शीला लज्जित होकर सिर झुका लेती है।]

चित्रा—जुग-जुग जीयो बहन ! तुम दोनों एक-दूसरे को पाकर परम सौभाग्यशाली बनो ।

पांचवां दृश्य

स्थान—सम्राट् बिन्दुसार का महल

समय—रात के तीन बजे

[सम्राट् बिन्दुसार पहली सांझ से बेहोश पड़े हैं । पास ही राजवैद्य उनकी नाड़ी पकड़े बैठे हैं । एक तरफ युवराज सुमन खड़े हुए हैं; दूसरी ओर बहुत ही उदास भाव से चित्रा बैठी है । सब ओर सन्नाटा है । सभी दरवाजों पर रक्षकों का पहरा है ।]

राजवैद्य—(नाड़ी टटोलकर) नाड़ी की गति अब बढ़ गई है ।

सुमन—(धीरे से) इसका क्या अभिप्राय है ?

राजवैद्य—सम्भवत: शीघ्र ही सम्राट् की बेहोशी टूट जाएगी । परन्तु इस समय बहुत ही सतर्क रहने की आवश्यकता है ।

[सहसा सम्राट् धीरे-धीरे करवट बदलते हैं । तब चित्रा और युवराज दोनों उठकर खड़े हो जाते हैं ।]

सम्राट्—(बेहोशी में ही) बेटा सुमन !

सुमन—जी पिताजी !

सम्राट्—(बेहोशी में ही) ना सुमन, जिद मत करो ! मेरी बात मान जाओ बेटा ! मेरे साथ चलकर क्या करोगे ? तुम यहीं रहो, तुम कहीं मत जाओ !

सुमन—पिताजी, मैं आपके पास ही हूं ।

सम्राट्—(सहसा होश में आकर, जरा चकित और बहुत ही

कमजोर दृष्टि से दो-एक क्षणों तक सुमन और चित्रा की ओर चुपचाप देखते रहते हैं। इसके बाद बहुत धीरे स्वर में कहते हैं) मैं जा रहा हूं सुमन !

सुमन—(अपनी रुलाई को जबरदस्ती रोककर) नहीं पिताजी ! परमात्मा करे आपका हाथ हम पर सदा बना रहे।

सम्राट्—अशोक ! तिष्य ! वे दोनों कहां हैं।

सुमन—वे भी शीघ्र यहां पहुंच जाएंगे पिताजी।

सम्राट्—अशोक से नाराज न होना बेटा वह जन्म ही से जरा तेज स्वभाव का है।

सुमन—अब तबीयत कैसी है पिताजी ?

सम्राट्—बस, अब सब समाप्त हो जाएगा।

[युवक बरदाश्त नहीं कर सकते। कहीं रुलाई फूट न पड़े, इस भय से वे पीछे हट जाते हैं]

चित्रा—पिताजी !

सम्राट्—(धीरे-धीरे आंखें घुमाकर) हां बेटी !

चित्रा—बहुत तकलीफ मालूम हो रही है पिताजी ?

सम्राट्—नहीं बेटी।…अपना हाथ तो जरा इधर लाओ।

[चित्रा अपना दाहिना हाथ सम्राट् के हाथ के पास ले जाती है। सम्राट् धीरे से उसे पकड़ लेते हैं।]

सम्राट्—मेरे पीछे उदास मत होना चित्रा !

[चित्रा की रुलाई फूटना चाहती है, मगर वह सहन किए रहती है]

चित्रा—पिताजी, आप जरूर अच्छे हो जाएंगे !

[सम्राट् के मुंह पर फीकी-सी मुस्कान दिखाई देती है।]

वैद्यराज—(चित्रा को लक्ष्य करके धीरे से) सम्राट् से बातचीत न कीजिए राजकुमारी !

[चित्रा पिता का हाथ पकड़े घुटने टेककर वहीं बैठ जाती है। एक क्षण

सन्नाटा रहता है। उसके बाद सम्राट् की मुट्ठी ढीली पड़ जाती है। उनके गले में से घरघराहट की तीखी-सी आवाज सुनाई देने लगती है। सब लोग घबरा जाते हैं।]

वैद्यराज—युवराज, अब कोई आशा प्रतीत नहीं होती।

सम्राट्—(सहसा अस्पष्ट-सी आवाज में गुनगुना उठते हैं) मैं आया पिताजी !...अशोक...तिष्य...सुमन...चित्रा !...

[इसके बाद वे जैसे दिल ही दिल में कुछ गुनगुनाते रहते हैं। उनकी नाड़ी वैद्यराज के हाथों में है। क्रमशः सन्नाटा छा जाता है।]

वैद्यराज—बस, सब समाप्त हो गया।

[चित्रा दहाड़ें मारकर रो उठती है। युवराज सम्राट् के चरणों पर सिर रखकर रोने लगते हैं। सम्राट् का शरीर राजकीय झण्डे से ढक दिया जाता है।]

दृश्य बदलता है।

[पाटलिपुत्र का एक सामान्य दृश्य। नगर में सन्नाटा छाया हुआ है। सभी जगह काले झण्डे उड़ रहे हैं। नागरिकों ने भी काले वस्त्र पहन रखे हैं। राजमहलों के आसपास हजारों नागरिक जमा हैं। बाजार बन्द हैं। सारा नगर शोकमग्न दिखाई दे रहा है।]

छठा दृश्य

स्थान—गण्डक नदी का किनारा

समय—रात का पहला प्रहर

[नदी के किनारे राजकुमार अशोक की सेना का डेरा लगा हुआ है। एक तम्बू में अशोक के सेनापति चण्डगिरि तथा अन्य सहायक मन्त्रणा के लिए एकत्रित हैं। बाहर तेज आंधी चल रही है। अशोक इसी

अशोक—चण्डगिरि, युवराज को मुझपर अगाध विश्वास है। तुमने उनका वह पत्र नहीं पढ़ा, जिसमें उन्होंने सम्राट् के देहान्त का समाचार देकर मुझे पाटलिपुत्र चले आने को लिखा है। उस पत्र का एक-एक अक्षर मेरे प्रति गहरे प्रेम और विश्वास में डूबा हुआ है। और,····और कहते हुए कुछ लज्जा-सी प्रतीत होती है उस पत्र पर बहन मित्रा ने भी दो-चार पंक्तियाँ लिखी हैं। ओह, मेरी यह बहन कितने सरल हृदय की है !

चण्डगिरि—यही सब तो माया के चिह्न हैं महाराज ! आप अपने भाई पर अत्याचार करने तो नहीं चले हैं। आप चले हैं साम्राज्य के हित की इच्छा से; इस मगध-साम्राज्य को संसार का सबसे महान् साम्राज्य बना देने की महत्त्वाकांक्षा से। हृदय के उत्साह को मसल देने वाली इस थोथी भावुकता को जी से निकालकर ज़रा सोचिए तो ! आप अपने पिता के साम्राज्य को संसार का सबसे बड़ा और सबसे अधिक सुशासित महासाम्राज्य बना देने की पुण्य महत्त्वाकांक्षा से पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने चले हैं। भाई और बहन के भावों का सम्मान करना कुछ बुरी बात नहीं है। परन्तु मुझे मालूम है कि उनपर किसी तरह का अत्याचार करने की आपकी ज़रा भी इच्छा नहीं है। आप तो सिर्फ साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेने चले हैं; और वह भी पूर्णतया साम्राज्य के हितों के विचार से ही।

अशोक—ठीक कहते हो चण्डगिरि ! मैं अपने भाई को कश्मीर भेज दूँगा और आजन्म उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखूँगा। मगर साम्राज्य के हित की दृष्टि से पाटलिपुत्र पर अधिकार तो करना ही होगा।

चण्डगिरि—यही बात आपको शोभा देती है राजकुमार !

अशोक—तुम मनुष्य नहीं दानव हो चण्डगिरि !

चण्डगिरि—मेरा यह सम्पूर्ण दानवपन आपके चरणों पर न्योछावर है महाराज !

[अशोक फीका-सा मुस्कराकर चुप रह जाता है।]

चण्डगिरि—आपने तक्षशिला के नागरिकों के क्रोध से मेरी रक्षा की थी। मैं आपके उपकार से आजन्म उऋण नहीं हो सकूंगा। अपना जीवन देकर भी नहीं।

अशोक—प्रातःकाल प्रस्थान के लिए सब लोग तैयार रहो।

चण्डगिरि—यहां से पाटलिपुत्र पहुंचने में अब सिर्फ तीन दिन बाकी हैं। आज से चौथे दिन आप मगध-साम्राज्य के सम्राट् होंगे राजकुमार !

अशोक—बीच-बीच में भावुकता मुझे अपना शिकार बना लेती है। चण्डगिरि, मैं आशा करता हूं कि तुम्हारे ऐसा दानव सदा मुझे उसके आक्रमण से बचा लिया करेगा।

चण्डगिरि—(ज़रा मुस्कराकर) आप इस ओर से निश्चिन्त रहें राजकुमार !

अशोक—आप लोग अब जा सकते हैं।

[सबका प्रस्थान]

सातवां दृश्य

स्थान—कामरूप की राजधानी

समय—मध्याह्नोत्तर

[राजकुमार तिष्य बहुत ही उद्विग्न भाव से एक ही जगह के आसपास टहल रहे हैं और पाटलिपुत्र से आए हुए एक दूत के साथ, जो पत्थर की मूर्ति के समान निश्चल होकर खड़ा है, बातचीत कर रहे हैं।]

तिष्य—तो फिर ?

दूत—युवराज अपने इस आग्रह पर डटे ही रहे कि वे अपने भाई
साथ युद्ध नहीं करेंगे। यहां तक कि राजकुमारी चित्रा ने भी उन्हें
द्ध के लिए प्रेरित किया, मगर उन्होंने उसकी भी एक न सुनी।

तिष्य—और अशोक ?

दूत—राजकुमार अशोक पाटलिपुत्र के चारों ओर घेरे डालकर पड़े
ए थे। नगर के सभी द्वार बन्द थे। नागरिकों में इतना गहरा रोष
या कि वह रोष पाटलिपुत्र के इतिहास में अदृष्टपूर्व है। पाटलिपुत्र के
गर-भवन के सम्मुख राजकुमार अशोक की जो प्रस्तर-मूर्ति है, उस पर
एक रात में कम से कम एक लाख जूते पड़े होंगे। उस मूर्ति का नाक-
मुंह सभी क्रुद्ध जूतों की इस निरन्तर मार से घिस गया है।

तिष्य—आखिर युवराज करते क्या रहे ?

दूत—उन्हें जब मालूम हुआ कि नागरिक राजकुमार अशोक की प्रस्तर-मूर्ति का यह अपमान कर रहे हैं, तो प्रभात में स्वयं उस स्थान पर पहुंचकर उन्होंने शरीर-रक्षकों को उस मूर्ति की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया।

तिष्य—इसके बाद ?

दूत—इसके बाद उन्होंने भग्न हृदय से पाटलिपुत्र [redacted] नगर-भवन के सामने एकत्र हुई हज़ारों नागरिकों की भीड़ से कहा, "भाइयो, आप लोग जब अशोक की मूर्ति का अपमान करते हैं, तो मेरा अपमान करते हैं। आप लोग मेरी बात मानिए और नगर के द्वार खोल दीजिए।"

तिष्य—यहां तक ! ओहो !

दूत—युवराज की यह बात सुनकर पाटलिपुत्र के हज़ारों नागरिकों की वह भीड़ बच्चों की तरह फफककर रो उठी।

तिष्य—(आंसू पोंछकर) इसके बाद ?

दूत—इस पर नगर समिति के अध्यक्ष ने रोते-रोते युवराज से कहा "महाराज, यह हम से न होगा ! हम लोगों के प्राण चले जाएं, मगर

हम अशोक के स्वागत में नगर के फाटक कभी न खोल सकेंगे।"

तिष्य—शाबाश नागरिको! तब?

दूत—तब युवराज ने स्वयं आकर अपने शरीर-रक्षकों की सहायता से नगर के द्वार खोल दिये और तब अशोक की सेना नगर में घुस आई। पाटलिपुत्र के नवयुवक गुस्से से दांत पीसने लगे; वृद्ध सिसकियां भरने लगे और महिलाएं चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगीं। सभी ओर मातम छा गया। मगर युवराज का लिहाज करके किसी ने अशोक के खिलाफ अस्त्र नहीं उठाया। अशोक के सैनिकों ने अनायास ही सम्पूर्ण नगर पर अधिकार कर लिया।

तिष्य—युवराज तुम देवता हो! (दूत से) युवराज अब कहां हैं?

दूत—राजमहल के राजकीय कारागार में।

तिष्य—युवराज और कैद में! मैं यह क्या सुन रहा हूं! पृथ्वी, तू फट क्यों नहीं जाती? आकाश! तुम्हारा वज्र किधर है? मगध-साम्राज्य के नागरिको! तुम्हारा खून क्यों नहीं खौल उठता? आज संसार की सबसे बड़ी विभूति, मेरे दादा महान् चन्द्रगुप्त मौर्य का सबसे बड़ा पौत्र इस महासाम्राज्य का एक मात्र उत्तराधिकारी जेल में पड़ा है और सारा संसार उसी तरह शान्त भाव से चला जा रहा है, जैसे कुछ हुआ ही न हो। हे प्रभो! (आवेश से राजकुमार का सारा शरीर कांपने लगता है। उन्हें शीघ्र ही मूर्च्छा आ जाती है)

दूत—कोई है?

[एक रक्षक का प्रवेश]

रक्षक—आज्ञा कीजिए!

दूत—राजकुमार को सम्भालो।

[अनेक रक्षक आकर राजकुमार के शरीर को सम्भाल लेते हैं। इसी समय वैद्य भी आ पहुंचते हैं।]

पटाक्षेप

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का राजकीय बन्दीगृह

समय—प्रभात

[बन्दीगृह में युवराज सुमन चुपचाप बैठे कुछ सोच रहे हैं। द्वार पर पहरेदार धीरे-धीरे चक्कर लगा रहा है।]

सुमन—आखिर यह दिन देखना भी भाग्य में बदा था ! अशोक, निष्ठुरता के बीज तो तुममें बचपन ही से थे, परन्तु तुम यहाँ तक बढ़ जाओगे, इसकी कल्पना किसी को नहीं थी। (सहसा एक हूक-सी मानो जबरदस्ती, उनके अन्तस्तल से उठ खड़ी होती है और वे गहरी साँस लेते हैं) अशोक, तुमने मेरा दिल तोड़ दिया है ! मैं कष्ट की परवाह नहीं करता। राजसिंहासन को मनोविनोद और ऐश-आराम का साधन मैंने एक दिन के लिए भी नहीं समझा। जेल की पराधीनता भी मैं सहन कर सकता हूं। परन्तु तुम्हारी यह निष्ठुरता ! यह मुझसे सहन नहीं होती। उफ, यह कितनी तीव्र वेदना है ! (सहसा उसकी निगाह पहरेदार पर पड़ती है) आज सम्पूर्ण पाटलिपुत्र सीमाप्रान्त के विशालकाय सैनिकों की देख-रेख में है। यह लम्बा-चौड़ा पहरेदार ! मगर हमारे सैनिक क्या इनका मुकाबला नहीं कर सकते थे ? पाटलिपुत्र की सुशिक्षित सेना का सामना संसार के और किस देश की सेना कर सकती है? परन्तु मैंने तो युद्ध की नौबत ही नहीं आने दी। क्या मैंने यह ठीक किया ?…हाँ, मेरा अन्तःकरण कहता है, मैंने ठीक किया ! बड़ा भाई होकर छोटे भाई पर हाथ उठाता ! वह सम्राट् बनना चाहता है, उसे

सम्राट् बन जाने दो !···मगर अशोक, तुमने इस तरह आक्रमण करके मेरा दिल क्यों तोड़ दिया ? तुम नहीं जानते, मैं कितनी उत्सुकता से तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था।···जरा इस पहरेदार से ही बातचीत करूं। आदमी तो कुछ बुरा प्रतीत नहीं होता।

सुमन—पहरेदार !

पहरे०—(रुककर) हुजूर !

सुमन—इधर आओ।

पहरे०—(नजदीक आकर) हुक्म कीजिए।

सुमन—तुम्हारा घर कहाँ है ?

पहरे०—मुझे अपने घर के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं हुजूर।

सुमन—तुम्हारा बचपन कहाँ बीता ?

पहरे०—तक्षशिला के सैनिक अनाथगृह में।

सुमन—तुमने कभी सम्राट् बिन्दुसार को देखा था।

पहरे०—(सम्राट् का नाम सुनकर वह शीघ्रता से तलवार शिरस्त्राण से छुआकर सम्मान प्रदर्शित करता है) जी हाँ !

सुमन—कहाँ ?

पहरे०—जब वे तक्षशिला का निरीक्षण करने आये थे, तब मैं बालक ही था।

सुमन—कभी पहले भी पाटलिपुत्र आए हो ?

पहरे०—जी नहीं !

सुमन—तुम्हें यह नगर पसन्द आया ?

पहरे०—अभी तो कुछ देखा ही नहीं हुजूर ! मगर कुछ अच्छा असर नहीं पड़ा ?

सुमन—क्यों ?

पहरे०—यहाँ के लोग कुछ डरपोक से प्रतीत होते···

सुमन—क्योंकि उन्होंने तुम्हारा सामना नहीं किया ?

पहरे०—यह तो मैं नहीं कह सकता। मगर हम लोगों पर अच्छा असर नहीं पड़ा है !

[सुमन सहसा गम्भीर हो जाते हैं; जैसे इस उजड्ड अर्धशिक्षित दार ने उनके अन्तःकरण को चोट पहुंचाई हो। युवराज को देखकर पहरेदार फिर से अपने घूमने की कवायद शुरू कर देता है

सुमन—(स्वगत) सुमन ! सुन लिया ? तुम्हारे भ्रातृ-प्रेम की सुन्दर व्याख्या सीमाप्रान्त के अर्धशिक्षित सैनिक ने की है ! ये सब मुझे कितना कायर समझ रहे होंगे !

[चण्डगिरि का प्रवेश। पहरेदार तलवार शिरस्त्राण से छुमाकर उसे नमस्कार करता है]

चण्डगिरि—सब ठीक है ?

पहरे०—ठीक है हुजूर !

[युवराज को चण्डगिरि की सूरत कुछ परिचित-सी तो प्रतीत होती है, मगर वे उसे पहचान नहीं पाते। इसी समय चण्डगिरि निकट आकर सैनिक ढंग से उन्हें नमस्कार करता है।]

सुमन—तुम कौन हो ?

चण्ड०—जी ! मेरा नाम चण्डगिरि है।

सुमन—ओह, चण्डगिरि ! तुममें बड़ा परिवर्तन आ गया !

चण्ड०—जी, परिवर्तन तो इस संसार का नियम ही है।

सुमन—देखो, अशोक को मेरे पास भेज सकोगे ?

चण्ड०—जी, कह नहीं सकता। मैं उनकी सेवा में निवेदन अवश्य कर दूंगा।

सुमन—तुम साम्राज्य के सेनापति नियुक्त हुए हो ?

चण्ड०—जी !

सुमन—नगर में कहीं विद्रोह तो नहीं हुआ चण्डगिरि ?

चण्ड०—जी नहीं। सब जगह शान्ति है।

सुमन—नागरिकों में असन्तोष तो नहीं है ?

चण्ड०—जी, मालूम तो बिलकुल नहीं होता !

[सुमन चुपचाप सोचने लगते हैं]

चण्ड०—जी, आपको यहाँ कोई कष्ट तो नहीं ?

सुमन—नहीं।

[चण्डगिरि का सैनिक ढंग से प्रणाम करके प्रस्थान]

सुमन—(स्वगत) पाटलिपुत्र में पूर्णतः शान्ति है, इस समाचार से मुझे खुशी होनी चाहिए अथवा रंज—कुछ समझ में नहीं आता। मैं इधर जेल में पड़ा हूं। सीमाप्रान्त के सैनिक मुझे और पाटलिपुत्र के सैनिकों को कायर समझ रहे हैं। नगर में पूरी शान्ति है। अशोक ने अपना मन्त्रिमण्डल बना लिया है। साम्राज्य का काम उसी तरह चला जा रहा है। इस सबके बीच तुम्हारी भी क्या कोई जगह है सुमन ? हे ईश्वर ! तुमने ऐसा दिल दिया था तो मुझे अशोक का भाई हीं क्यों बना दिया। (युवराज की आंखों में आंसू आ जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

स्थान—आचार्य दीपवर्धन का मकान

समय—मध्याह्नपूर्व

[आचार्य दीपवर्धन बीमार पड़े हैं। रह-रहकर उन्हें प्रलाप-मूर्च्छा आ जाती है। वीना उनके सिरहाने बैठी है।]

नहीं करेगा ।

शीला—आप इतनी चिन्ता क्यों करते है पिताजी ! यह तो होता ही रहता है । आखिर वे दोनों सगे भाई है । राजकुमार अशोक उनके दुश्मन तो नहीं है । गद्दी पर एक भाई न सही, तो दूसरा भाई ही सही । अशोक उन्हें किसी किस्म की तकलीफ न पहुंचाएंगे ।

दीप०—मेरा जी नहीं मानता बेटी । मेरी कल्पना के सम्मुख बड़े भयंकर-भयंकर चित्र खिंच जाते हैं । जरूर कोई भारी अनर्थ होने वाला है ।

[वैद्य का प्रवेश]

वैद्य—(दीपवर्धन की परीक्षा करके) यह आरम्भिक आघात का परिणाम है । आप चिन्ता न करें । मैं अभी नींद की एक दवाई देता हूं, जो तत्काल अपना प्रभाव दिखाएगी । नींद आपके लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध होगी ।

दीप०—मैं कोई दवाई नहीं खाऊंगा । मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है वैद्यजी !

[सहसा दीपवर्धन की निगाह शीला के चेहरे पर पड़ती है, वे अनुभव करते हैं कि उनकी इस बात से शीला को ठेस पहुंची है । अतः वे शीघ्रता से अपनी बात बदल देते हैं ।]

दीप०—नहीं वैद्यजी, आप दवाई दीजिए, मैं खुशी से उसका सेवन करूंगा ।

[वैद्यजी दवाई पिलाते हैं और शीघ्र ही दीपवर्धन को नींद आ जाती है]

वैद्य—(शीला से) महाराजजी के स्वास्थ्य का बहुत अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है, राजकुमारी ! उनकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक है ।

शीला—इनकी दशा कब तो आएगी ?

संघ—सायंकाल। मैं उस समय पुनः इन्हें देखने आऊंगा। (प्रस्थान)

शीला—(दीपवर्धन के कपड़े ठीक करते हुए स्वगत) मैं सब समझती हूं पिताजी! मेरे दुःख ने आपका दिल तोड़ दिया है। ओह, मैं कितना चाहती हूं कि आपसे अपने दिल के दुःख को छिपाए रखूं। इसी से मैंने एक बार भी अपनी आंखों में आंसू तक नहीं आने दिए। मगर आप सब समझते हैं पिताजी! ओह, मैं अभागी क्या करूं? अशोक, तुम कितने निठुर हो?

तीसरा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का राजमहल

समय—सायंकाल

[महल के बाहर पाटलिपुत्र के कुछ कुछ नागरिकों की एक बहुत बड़ी भीड़ जमा है। फाटकों पर सशस्त्र सैनिकों का पहरा है। कोई अन्दर आ-जा नहीं सकता।]

एक नागरिक—(ऊंचे स्वर में) पाटलिपुत्र के नागरिको, तुम्हें ज्ञात है कि अत्याचारी अशोक ने युवराज को कैद में डाल रखा है!

पहली आवाज—हम इसे कभी सहन नहीं करेंगे!

दूसरी आ०—हम अत्याचारी अशोक को कभी अपना सम्राट् नहीं मान सकते!

तीसरी आ०—पाटलिपुत्र के निवासियों में अभी जीवन बाकी है!

चौथी आ०—महलों पर आक्रमण कर दो!

पांचवीं आ०—अशोक को गिरफ्तार कर लो?

छठी आ०—पापी अशोक का नाश हो?

सब लोग—(एकसाथ) पापी अशोक का नाश हो?

पहला ना०—भाइयो, इस तरह काम नहीं चलेगा। हमें चाहिए कि हम लोग ठीक ढंग से अपने मुखियाओं का निर्वाचन कर लें, और तब संगठित होकर कोई काम शुरू करें।

अनेक आवाजें—ठीक है, ठीक है।

[सब लोग वहीं बैठ जाते हैं और उसी नागरिक की अध्यक्षता में मन्त्रणा शुरू होती है और बीच-बीच में नारे लगते जाते हैं।]

[दृश्य बदलता है।]

[अशोक अपने सहायकों तथा मन्त्रियों सहित राजसभा-भवन में बैठा है। नगर की परिस्थितियों पर विचार किया जा रहा है]

अशोक—तो फिर यही निश्चय रहा कि अभी राज्याभिषेक के उत्सव को स्थगित रखा जाए?

अनेक मन्त्री—जी हाँ महाराज?

चण्डगिरि—मेरी राय से हमें तक्षशिला से और भी सैनिक पाटलिपुत्र में मंगवा लेने चाहिएं।

अशोक—नहीं, मैं इससे सहमत नहीं हूं। इस दशा में सीमाप्रान्त असुरक्षित हो जाएगा और तब यूनानियों को भारत पर आक्रमण करने का अवसर मिल जाएगा।

प्रधानमन्त्री—आपकी राय ठीक है महाराज!

अशोक—मेरी यह भी राय है कि हमें जनता में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए।

चण्ड०—यह बात संभव नहीं है महाराज?

अशोक—सम्भव कैसे नहीं है?

[इसी समय दूर पर से हजारों कण्ठों की क्रुद्ध-सी अस्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

अशोक—यह कैसी आवाज है सेनापति?

चण्ड०—पाटलिपुत्र के नागरिक राजमहलों पर धावा करने के मन्सूबे बांध रहे हैं।

अशोक—सचमुच ?

चण्ड०—(ज़रा मुसकराकर) और असम्भव नहीं कि एक प्रहर के अन्दर ही अन्दर राजमहलों में आग लगी हुई नज़र आए। आपको शायद कभी क्रुद्ध जनता से वास्ता नहीं पड़ा महाराज! मुझे तक्षशिला का अनुभव है। जनता का क्रोध बिलकुल अन्धा होता है हुज़ूर!

अशोक—तुम्हारी क्या राय है चण्डगिरि ?

चण्ड०—बस, आपकी आज्ञा की देर है।

अशोक—कैसी आज्ञा ?

चण्ड०—आपका इशारा ही काफ़ी है। हमारे वीर सैनिक पाटलिपुत्र में खून की नदियां बहा देंगे।

अशोक—(कांपकर) नहीं चण्डगिरि! मैं इस तरह की आज्ञा कदापि नहीं दे सकता। पाटलिपुत्र की जनता को मैं अपने प्राणों से बढ़कर चाहता हूं।

चण्ड०—मुझे स्पष्ट भाषण के लिए क्षमा कीजिएगा महाराज! यदि यही बात थी तो आपने उनके हृदय को ठेस क्यों पहुंचाई ?

अशोक—केवल साम्राज्य के हित की ख़ातिर। मुझे विश्वास है कि मैं शीघ्र ही उनके हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर सकूंगा।

[इसी समय पुनः शोर सुनाई देता है।]

चण्ड०—इस शोर को सुनिए महाराज! यह कम से कम पचास हज़ार क्रुद्ध नागरिकों के कण्ठों की सम्मिलित आवाज़ है।

अशोक—(बड़ी उद्विग्नता से) नहीं, नहीं कदापि; नहीं। मैं पाटलि-नागरिकों की हत्या करने की आज्ञा कभी किसी भी दशा में

· ·› ।

चण्ड०—और मेरी राय है कि इसके बिना काम नहीं चल सकता। हमारे मार्ग की दोनों बाधाएं महाभयंकर हैं।

अशोक—दोनों कौन-सी ?

चण्ड०—एक जनता का क्रोध और दूसरे युवराज।

अशोक—(सहसा बहुत अधिक क्रोधित हो उठता है, परन्तु अपने को संभालकर कहता है) ऐसी बात मैं दूसरी बार नहीं सुनूंगा चण्डगिरि !

[इसी समय अचानक शीला का प्रवेश। शरीर पर वह सिर्फ एक लम्बा सफेद वस्त्र पहने हुए है। उसके मुंह पर अत्यधिक शान्त गम्भीरता है। इस शान्त वेश में उसके शान्त सौन्दर्य से, जैसे सम्पूर्ण सभा-भवन में उजाला-सा हो जाता है।]

अशोक—(चौंककर) यह कौन ?

[सब लोग स्तब्ध भाव से चुपचाप बैठे रहते हैं। शीला निकट आकर सहज ढंग से अशोक के सम्मुख खड़ी हो जाती है।]

शीला—अशोक।

[अशोक कोई जवाब नहीं देता। वह विस्मय के साथ इस अद्भुत नारी की ओर देखता रह जाता है।]

शीला—अशोक, मैं तुम्हारी भाभी हूं।

[अशोक खड़ा होकर प्रणाम करता है।]

शीला—बैठ जाओ देवर ! (अशोक बैठ जाता है)

[इसी समय एक कर्मचारी शीला के लिए भी आसन लाकर रख देता है।]

शीला—नहीं, मैं बहुत थोड़ी देर के लिए यहां आई हूं मैं खड़ी ही रहूंगी।

अशोक—आप ! आप यहां ! इस वेश में ! इस तरह !

शीला—अशोक, मैं एक बड़ी जरूरी बात के लिए तुम्हारे पास आई हूं।

अशोक—आज्ञा कीजिए राजकुमारी!

शीला—(ज़रा-सा मुसकराकर) नहीं, मुझे राजकुमारी मत कहो सिर्फ भाभी कहो। तुम्हें मालूम है कि सम्राट् तुम्हारे बड़े भाई के विवा का दिन निश्चित कर गए थे!

अशोक—जी हाँ!

शीला—और वह दिन परसों है।

अशोक—जी!

शीला—तुम्हारे राज्य के इन झगड़ों से मेरे विवाह का तो को सम्बन्ध है ही नहीं। वह विवाह परसों होगा ही। तुम्हें इसमें को आपत्ति तो नहीं है अशोक?

अशोक—(बहुत अधिक घबराकर) नहीं, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है राजकुमारी!

शीला—धन्यवाद!

[*शीला धीरे-धीरे वापस लौट चलती है। मगर शीघ्र ही जैसे कोई भूली बात याद कर वह पुनः अशोक की ओर लौट पड़ती है।*]

शीला—अशोक, मेरे पिताजी बहुत अधिक बीमार हैं। मैं कह नहीं सकती कि वे बचेंगे भी या नहीं!

अशोक—आपके पिता आचार्य दीपवर्धन?

शीला—हाँ, वही। और उनकी बीमारी का कारण तुम्हें मालूम है?

अशोक—नहीं।

शीला—उन्हें इस मिथ्या बात का भ्रमपूर्ण विश्वास हो गया है कि तुम अपने बड़े भाई की हत्या कर दोगे।

अशोक—(चौंककर लड़खड़ाती हुई आवाज़ में) मैं इतना नीच नहीं हूं भाभी!

शीला—तो अगर तुम ज़रा उनके पास चलकर उन्हें इस बात का

विश्वास दिला सको तो तुम्हारी बड़ी दया होगी।

अशोक—मैं अवश्य उनकी सेवा में उपस्थित होऊंगा।

शीला—और सुनो देवर, मेरे विवाह में धूमधाम बिलकुल नहीं होगी। पुरोहित को छोड़कर सिर्फ तुम्हीं वहां आने पाओगे। बहन चित्रा भी नहीं। यह विवाह जेल में जो होगा। (ज़रा-सी मुस्कराहट)

[अशोक प्रस्तर-मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा रहता है।]

शीला—और विवाह के बाद अगर तुम अनुमति दोगे तो हम दोनों कश्मीर चले जाएंगे; अन्यथा पाटलिपुत्र के कारागार का एक कोना ही हम दोनों के लिए काफी होगा।

[अशोक की आंखों में आंसू चमक आते हैं।]

शीला—यह क्या देवर! तुम्हारी आंखों में आंसू! ओह, मैं भ्रम में थी। मैं बहुत बड़े भ्रम में थी! मैं तुम्हें पाषाणहृदय समझती थी। नहीं तुम्हारे भी हृदय है आखिर तुम उन्हीं के छोटे भाई हो न! रोओ नहीं देवर; वे तुमसे ज़रा भी नाराज़ न होंगे। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूं। वे तुम्हें क्षमा कर देंगे। तुम्हारे प्रति अपने जी में ज़रा भी मैल न रखेंगे। अपने आंसू पोंछ डालो देवर!

[अशोक के सिर पर अपना आशीर्वाद-भरा हाथ रखकर शीला धीरे-धीरे वापस चली जाती है। उसके चले जाने [redacted] बाद भी अनेकों क्षणों तक सभा-भवन में सन्नाटा छाया रहता है। इसके बाद जैसे अशोक सहसा नींद से जाग उठता है।]

अशोक—आप सब लोग जाइए। मैं एकान्त चाहता हूं।

[सब लोग चले जाते हैं। केवल चण्डगिरि वहीं बना रहता है।]

अशोक—चण्डगिरि, तुम भी जाओ।

[बड़े अनमने भाव से चण्डगिरि धीरे-धीरे चला जाता है।]

अशोक—आज्ञा कीजिए राजकुमारी !

शीला—(ज़रा-सा मुसकराकर) नहीं, मुझे राजकुमारी मत कहो। सिर्फ भाभी कहो। तुम्हें मालूम है कि सम्राट् तुम्हारे बड़े भाई के विवाह का दिन निश्चित कर गए थे !

अशोक—जी हाँ !

शीला—और वह दिन परसों है।

अशोक—जी !

शीला—तुम्हारे राज्य के इन झगड़ों से मेरे विवाह का तो कोई सम्बन्ध है ही नहीं। यह विवाह परसों होगा ही। तुम्हें इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है अशोक ?

अशोक—(बहुत अधिक घबराकर) नहीं, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है राजकुमारी !

शीला—धन्यवाद !

[शीला धीरे-धीरे वापस लौट चलती है। मगर शीघ्र ही जैसे कोई भूली बात याद कर वह पुनः अशोक की ओर लौट पड़ती है।]

शीला—अशोक, मेरे पिताजी बहुत अधिक बीमार हैं। मैं कह नहीं सकती कि वे बचेंगे भी या नहीं !

अशोक—आपके पिता आचार्य दीपवर्धन ?

शीला—हाँ, वही। और उनकी बीमारी का कारण तुम्हें मालूम है ?

अशोक—नहीं।

शीला—उन्हें इस मिथ्या बात का अपूर्ण विश्वास हो गया है कि तुम अपने बड़े भाई की हत्या कर दोगे।

अशोक—(कांपकर लड़खड़ाती हुई आवाज़ में) मैं इतना नीच नहीं हूं भाभी !

शीला—तो अगर तुम ज़रा उनके पास चलकर उन्हें इस बात का

विश्वास दिला सको तो तुम्हारी बड़ी दया होगी।

अशोक—मैं अवश्य उनकी सेवा में उपस्थित होऊंगा।

शीला—और सुनो देवर, मेरे विवाह में धूमधाम बिलकुल नहीं होगी। पुरोहित को छोड़कर सिर्फ तुम्हीं वहां आने पाओगे। बहन तिष्य भी नहीं। यह विवाह जेल में जो होगा। (जरा-सी मुस्कराहट)

[अशोक प्रस्तर-मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा रहता है।]

शीला—और विवाह के बाद अगर तुम अनुमति दोगे तो हम दोनों कश्मीर चले जाएंगे; अन्यथा पाटलिपुत्र के कारागार का एक कोना ही हम दोनों के लिए काफी होगा।

[अशोक की आंखों में आंसू चमक आते हैं।]

शीला—यह क्या देवर! तुम्हारी आंखों में आंसू! ओह, मैं भ्रम में थी। मैं बहुत बड़े भ्रम में थी! मैं तुम्हें पाषाणहृदय समझती थी। नहीं तुम्हारे भी हृदय है आखिर तुम उन्हीं के छोटे भाई हो न! रोओ नहीं देवर; वे तुमसे जरा भी नाराज न होंगे। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूं। वे तुम्हें क्षमा कर देंगे। तुम्हारे प्रति अपने जी में जरा भी मैल न रखेंगे। अपने आंसू पोंछ डालो देवर!

[अशोक के सिर पर अपना आशीर्वाद-भरा हाथ रखकर शीला धीरे-धीरे वापस चली जाती है। उसके चले जाने के बाद भी अनेकों क्षणों तक सभा-भवन में सन्नाटा छाया रहता है। इसके बाद जैसे अशोक सहसा नींद से जाग उठता है।]

अशोक—आप सब लोग जाइए। मैं एकान्त चाहता हूं।

[सब लोग चले जाते हैं। केवल चण्डगिरि वहीं बना रहता है।]

अशोक—चण्डगिरि, तुम भी जाओ।

[बड़े अनमने भाव से चण्डगिरि धीरे-धीरे चला जाता है]

अशोक—मेरे हृदय में यह कैसा द्वन्द्व मच रहा है ! यह कैसी अनोखी-सी अनुभूति है। मैं इतना गिर कैसे गया ! मैंने अपने भाई को जेल में डाल रखा है। उस भाई को जिसने सदा मेरी भलाई सोची; सदा मेरी तरफदारी की। मुझे स्मरण है, माताजी सुमन को ज्यादा प्यार किया करती थी। सुमन बड़ा था, उसे रोज नई-नई चीजें मिलती थी। परन्तु वह अपना सभी कुछ मुझे दे दिया करता था। मुझे कभी उसकी किसी भी विशिष्ट वस्तु को ललचाई हुई निगाह से नहीं देखना पड़ा। ठीक अपनी उसी सहज उदारता के समान सुमन ने आज अपना समस्त साम्राज्य भी चुपचाप मेरे हवाले कर दिया ! सुमन ! भाई ! मुझे माफ करना ! और मेरी वह भाभी !" यह इस लोक की नहीं है। यह देवी है। अशोक, तुम इतने अधम हो कि अपनी इस मातास्वरूप भाभी के चरणों पर सिर झुकाकर रो तक भी नहीं सके। वह देवी तुम्हें क्षमा कर देती तो तुम्हारे सम्पूर्ण पापों का क्षण-भर में प्रायश्चित्त हो जाता।

[दृश्य बदलता है।]

[नागरिकों ने अपने लिए तीन नेताओं का निर्वाचन कर लिया है। तीनों नेता जरा ऊँची जगह पर खड़े होकर आपस में भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। इसी समय राजमहल की दीवार पर शीला दिखाई देती है।]

एक नागरिक—(चिल्लाकर) सम्राज्ञी की जय हो।

[सम्पूर्ण जनता में उत्साह की आंधी उमड़ पड़ती है। इसी समय शीला हाथ हिलाकर सबको शान्त हो जाने का इशारा करती है। दो-एक क्षण तक 'चुप रहो।' 'चुप रहो।' की आवाजें आती हैं और उसके बाद हजारों नागरिकों की उस भीड़ में सब ओर पूरी शान्ति छा जाती है]

शीला—भाइयो, आप क्या चाहते हैं ?

एक नेता—पाटलिपुत्र की जनता सम्राट् सुमन को चाहती है !

सब लोग - (एक साथ) सम्राट् सुमन की जय हो !

शीला—भाइयो, आपके इन उद्‌गारो के लिए युवराज की ओर से मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करती हू। मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि मेरी एक बात जरा शान्त होकर सुन लीजिए।

नेता—कहिए सम्राज्ञी, हम सब लोग पूरी तरह शान्त रहेगे।

शीला—अच्छा, पहले मेरे प्रश्न का जवाब दीजिए। युवराज को छुड़ाने के लिए आप क्या उपाय प्रयोग मे लाएगे।

एक नेता—हम राजमहल को धूल मे मिला देंगे।

दूसरा नेता—हम पाटलिपुत्र का अत्याचारियों के खून से रग देंगे।

तीसरा नेता—हम सीमाप्रान्त के उजड्ड सैनिको की चटनी बना देंगे।

शीला—जरा शान्त रहिए। क्या आप समझते हैं कि आपकी इन बातों से युवराज को खुशी होगी ? यदि आपका यही विचार है तो मैं कहूंगी कि आप भ्रम मे हैं। युवराज को यदि इसी तरह खून की नदियां बहानी होती, तो याद रखिए आज सीमाप्रान्त के ये अशिक्षित सैनिक यहां इस तरह दिखाई न दे रहे होते। तक्षशिला के नागरिको, यह याद रखो कि अशोक को युवराज उतना ही प्यार करते हैं, जितना वे तुम्हें, मुझे अथवा अपने-आपको करते है। (इसके बाद वह और भी अधिक उत्साह के साथ कहने लगती है) नागरिको, मैं अभी-अभी राजकुमार अशोक से मिलकर आ रही हू। अशोक को तुम लोगो ने गलत समझा है। मैंने अभी अभी उसकी आखो मे आंसुओ की चमक देखी है। अशोक ने अभी तक जो कुछ किया है, उस पर वह लज्जित है। उस पर उसे पश्चाताप है। मैं आपसे अनुरोध करती हूं, प्रार्थना करती

हूं कि आप लोग शान्त भाव से अपने घरों को लौट जाइए। मुझे विश्वास है कि परसों तक मैं आपको कोई बहुत अच्छी खबर सुना सकूंगी।

एक नेता—सम्राज्ञी की जय हो! परन्तु हमें अशोक पर भरोसा नहीं है।

शीला—भरोसा नहीं है! नागरिको, अगर भाई के प्रति भाई पर भरोसा नहीं किया जा सकता तो फिर संसार में और किस पर विश्वास किया जा सकेगा! नागरिको, मेरे हृदय में दुःख का तूफान चल रहा है। मेरे पति जेल में हैं, पिता मृत्यु शय्या पर पड़े हैं। मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि अशोक को आप मेरी जमानत पर छोड़ दीजिए।

नेता—आपके एक इशारे पर हम सब अपनी जान तक दे सकते हैं। हमें आपकी आज्ञा स्वीकार है सम्राज्ञी।

सब लोग—(एक साथ) सम्राज्ञी की जय हो।

[भीड़ तितर-बितर हो जाती है]

चौथा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र

समय—मध्याह्न

[राजमहल के एक छोटे-से कमरे में अशोक और चण्डगिरि आमने-सामने खड़े हैं।]

चण्डगिरि—तो मुझे चले जाने की आज्ञा दीजिए महाराज!

अशोक—इतने हताश न होओ चण्डगिरि।

चण्ड०—महाराज! (गला भर आता है)

अशोक—मैंने आज तक कभी तुम्हें इतना उद्विग्न नहीं देखा। तुम्हें ., . है सेनापति?

चण्ड०—महाराज, तक्षशिला के नागरिकों के क्रोध से जिस दिन आपने मेरी रक्षा की थी, उसी दिन मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि अपना शेष जीवन मैं आपकी सेवा में अर्पण कर दूंगा। मैंने निश्चय किया था कि आपकी खातिर मैं पाप-पुण्य, सुख-दुःख, शोक-मोह किसी की परवा नहीं करूंगा। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि आज यहाँ तक बढ़ आने के बाद, जब साफ तौर से यह दिखाई दे रहा है कि आपके लिए लौटने का मार्ग बन्द हो गया है, आप आग के साथ खेल करने को तैयार हो गए हैं। यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है मालिक! मुझे लौट जाने दीजिए महाराज!

अशोक—मैं सब समझता हूं, चण्डगिरि! किन्तु मैं लाचार हूं। अपने भाई पर मैं किसी तरह का अत्याचार नहीं कर सकूंगा।

चण्ड०—तभी तो मैं आपसे यह अनुरोध कर रहा हूं कि आप जो चाहें, कीजिए। सिर्फ मुझे यहां से चले जाने की अनुमति दे दीजिए।

अशोक—मुझे इतने खतरे में छोड़कर तुम चले जा सकते हो चण्डगिरि!

चण्ड०—हरगिज नहीं, मेरे मालिक! जहां आपका पसीना गिरेगा वहां मैं अपना खून बहा दूंगा। परन्तु जब आपका मुझ पर विश्वास ही नहीं रहा, जब आपका दृष्टिकोण बदल गया है, तब मुझे यहां रह कर आपकी इच्छा के मार्ग में कांटे बोने से क्या लाभ?

अशोक—तुम मेरी सेना के प्रधान सेनापति हो। तुम्हें कौन-सा अधिकार प्राप्त नहीं है?

चण्ड०—तो महाराज, क्या आप मुझे सभी तरह के अधिकार देते हैं?

अशोक—केवल पाटलिपुत्र की प्रजा पर अत्याचार करने और मेरे भाई के सम्बन्ध में कुछ भी करने के अतिरिक्त तुम सभी कुछ कर सकते हो।

चण्ड०—यह तो वैसी ही बात है, जैसे किसी का सांस बन्द कर उसे जीने की खुली छुट्टी दे दी जाए।

अशोक—पाटलिपुत्र तक्षशिला नहीं है, चण्डगिरि! तुम भूलते हो

चण्ड०—महाराज आज सांझ तक पाटलिपुत्र के नागरिक ज राजमहलों को आग लगा देंगे, तब आप जान लेंगे कि चण्डगिरि ने ठी कहा था। और महाराज, मैं यह कब चाहता हूं कि आप अपने प्र पर अत्याचार कीजिए। मैं तो सिर्फ इतना ही कहता हूं कि उन प कड़ा निरीक्षण रखिए और विद्रोहियों को सजा दीजिए। इससे अधि तो मैंने कुछ नहीं कहा।

अशोक—अच्छा सेनापति, तुम क्या चाहते हो।

चण्ड०—(अपनी जेब से एक कागज़ निकालकर) इस कागज़ प अपने हस्ताक्षर कर दीजिए महाराज! बस, और कुछ भी नहीं।

अशोक—(पढ़कर) तुम इतने असीमित अधिकार चाहते हो?

चण्ड०—महाराज, मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं कोई भी बात आपकी आज्ञा के बिना नहीं करूंगा। यह अधिकार मैं केवल इस उद्देश्य से लेना चाहता हूं कि तक्षशिला के विद्रोहियों को गिरफ्तार करके उन्हें यह धमकी दे सकूं कि मैं चाहे जो कुछ कर सकता हूं। इससे अधिक कुछ भी नहीं।

[अशोक बड़े अनमने भाव से उस कागज़ पर हस्ताक्षर कर देते हैं। उसी समय बाहर उद्यान में से किसी चील की इल्-ल्-ल् सी भयावनी आवाज सुनाई देती है। अशोक चौंक जाते हैं।]

अशोक—यह क्या है?

चण्ड०—कुछ नहीं, कोई पक्षी होगा महाराज!

अशोक—मेरे विश्वास का कोई अनुचित उपयोग न करना

चण्डगिरि !

चण्ड०—आप निश्चिन्त रहे मालिक ! (प्रणाम करके प्रस्थान)

पांचवां दृश्य

स्थान—चण्डगिरि का कमरा

समय—रात्रि

[चण्डगिरि और उसके दो सहकारी उपस्थित हैं। कमरा अन्दर से बन्द है।]

चण्डगिरि—अगर तुम यह काम कर सके तो तुम्हें मुंहमांगा इनाम मिलेगा।

सहकारी—मगर शायद सम्राट् को यह बात अभीष्ट नहीं है।

चण्ड०—बेवकूफ हुए हो क्या ? मेरे पास यह राजाज्ञा मौजूद है। एक सप्ताह तक मैं पाटलिपुत्र नगर में, जो चाहे कर सकता हूं।

सह०—फिर भी !

चण्ड०—फिर भी क्या ? मैंने सम्राट् से पूछ लिया है। उनकी बड़ी प्रबल इच्छा है कि जिस किसी तरह सुमन का झंझट सदा के लिए काट दिया जाए। निश्चिन्त रहो, अगर यह काम कर सके तो उन्हें इस से बड़ी प्रसन्नता होगी।

सह०—मगर युवराज का कसूर क्या है ?

चण्ड०—यह पूछना तुम्हारा काम नहीं है। बोलो, तुम यह काम कर सकोगे, या नहीं ?

[वह सैनिक अपने दूसरे साथी की ओर देखता है। दोनों में इशारे ही से कोई निश्चय होता है।]

सह०—जब तक आप युवराज का अपराध नहीं बताएंगे, तब तक तक मैं यह काम नहीं कर सकूंगा।

[गूंगे का प्रस्थान]

चण्ड०—चलूं, जरा राजमहल की सुरक्षा की भी फिक्र करूं।

[प्रस्थान]

छठा दृश्य

स्थान—कारागार

समय—प्रभात

[बाहर प्रचण्ड वर्षा के साथ-साथ सनसनाती हुई तेज हवा चल रही है। प्रकृति पूर्णरूप से विक्षुब्ध हो उठी है। सभी ओर से सांय-सांय का तेज शब्द सुनाई पड़ रहा है। युवराज सुमन अपनी कोठरी में एक खम्भे के सहारे खड़े होकर खिड़की की राह से बाहर का यह तूफान देख रहे हैं।]

सुमन—ओह, कैसा जोरों का तूफान है! मालूम होता है, जैसे सभी कुछ बह जाएगा, सभी कुछ उड़ जाएगा। बादलो! बरसो, और इतना बरसो कि इस धरती पर से मनुष्य की कलुषतापूर्ण सृष्टि ही धुल जाए। हवा! इतनी तेजी से चल कि यहां किसी का निशान बाकी न बचे। सभी कुछ उड़ जाए।...आज चौथा दिन है। मेरी खोज-खबर लेने कोई भी नहीं आया। सारी दुनिया मुझे भूल गई। जैसे इस जगत् में मेरा कोई स्थान ही न था। मनुष्य कितना अहंकार करता है! समझता है, मैं न रहूंगा तो यह हो जाएगा, वह हो जाएगा। मगर मनुष्य तो सदामुख चला जाता है और संसार का चक्र ठीक उसी तरह चलता रहता है।...अशोक! भाई अशोक! तुम कितने निठुर हो! मुझे सुलाने तक, एक बार देखने तक भी तो नहीं आए!...मैंने चन्द्रगिरि से

[सुमन और शीला चौंककर खड़े हो जाते हैं और पुरोहित महाराज घबराकर अपने आसन से उठ खड़े होते हैं।]

सुमन—(बड़े क्षोभ के साथ) चण्डगिरि !

[चण्डगिरि झुककर प्रणाम करता है।]

सुमन—यह तुम्हारी कैसी हरकत है, चण्डगिरि ?

चण्ड०—यह सम्राट् अशोक की आज्ञा है राजकुमार !

सुमन—कैसी आज्ञा ?

चण्ड०—(दो कागज आगे बढ़ाकर) यह लीजिए हुजूर !

[सुमन उन दोनों कागजों को पढ़कर कांपते हुए हाथों से चुपचाप उन्हें शीला की ओर बढ़ा देता है।]

शीला—(चौंककर) हैं ! युवराज के वध की आज्ञा ! नहीं, नहीं; हरगिज नहीं ! यह धोखेबाजी है। अशोक ऐसी आज्ञा कभी नहीं दे सकता। (शीला का चेहरा सफेद पड़ जाता है। उसका सारा शरीर लकवे के बीमार की तरह कांपने लगता है और बोलते-बोलते कण्ठावरोध हो जाता है]

चण्ड०—नहीं राजकुमारी, यह सम्राट् अशोक का आदेश है। वे भाई की हत्या की आज्ञा देते हुए घबराते थे, इसी से उन्होंने यह नया ढंग निकाला है। मुझे सभी तरह के अधिकार देकर मुझसे ही उन्होंने राजकुमार के प्राणदण्ड की व्यवस्था लिखवा ली है।

[सुमन अवाक्-से खड़े रह जाते हैं, जैसे वे पत्थर की मूर्ति हों। शीला बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़कर चण्डगिरि के सम्मुख घुटने टेककर बैठ जाती है और गिड़गिड़ाकर कहती है—]

शीला—दया करो ! मैं तुमसे युवराज के प्राणों की भीख मांगती हूं। चण्डगिरि, मुझ अभागिनी की यह एक प्रार्थना स्वीकार कर लो। कुछ देर के लिए ठहर जाओ। मुझे अशोक के पास हो आने दो। वे आते

अनायास ही उसके मुंह से निकलता है—]

शीला—अशोक ! अशोक ! तुम अब तक कहां थे ?

[अशोक को मानो कुछ भी सुनाई नहीं देता। उसी समय शीला की निगाह सुमन के निर्जीव शरीर पर पड़ती है जो खून से तर है। लाश का सिर्फ मुंह ही खुला हुआ है, बाकी सम्पूर्ण शरीर अशोक के रेशमी दुपट्टे से ढका हुआ है। शीला स्थल पर फेंकी गई मछली के समान तड़प उठती है। इसी समय अशोक की निगाह शीला पर पड़ती है। वह अत्यधिक भयभीत हो जाता है।]

शीला—(अशोक की आंखों से अपनी आंखें मिलाकर) खूनी ! चाण्डाल ! धोखेबाज !…ओह खून ! …खून !…युवराज !… प्राणनाथ ! !

[शीला का कण्ठावरोध हो जाता है और वह मूर्छित हो, लड़खड़ाकर गिर पड़ती है। एक कोने में दुबके हुए पण्डित जी बहुत ही मग्न भाव से गुनगुना रहे हैं।]

पंडितजी—हरे मुरारे ! मधुकैटभारे !!
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे ! ! !

सातवां दृश्य

स्थान—तक्षशिला

समय—सूर्यास्त

[राजमहल के मन्दिर में आरती के बाद एक साधु गा रहा है। रानी किसी बड़े मनोयोग से उसका गीत सुन रही है।]

गीत

तुम्हें कर याद जगदीश्वर ! हुआ जग हर्ष दीवाना
किसी ने किन्तु महिमा का न पूरा भेद पहचाना ।
असीमित शक्ति के स्वामी ! तुम्हारी कामना अनुपम
खिलाया फूल जगती का तुम्हीं ने नाथ ! मनमाना ।
बने हम मुग्ध अचरज से गगन में देख कुछ तारे
न जाने दूर तक बिखरे यहां ब्रह्मांड यह माना ।
नये ही रत्न-धन देते सदा से भूमि-गिरि-सागर
नहीं आसान वैभव की तुम्हारे थाह कुछ पाना ।
निराशा के दुखद पल में न जब होता जगत् साथी
भुलाया जा नहीं सकता तुम्हारा प्रेम से आना ।
बसाने को तुम्हें जग ने महल मीनार चुन डाले
हृदय का दिव्य मन्दिर है तुम्हारा घर न यह जाना ।
उसी मेरे विमल मन में जगाने ज्ञान का दीपक
कृपा कर नाथ ! पल भर को झलक अपनी दिखा जाना ।

[गीत के बाद तिपी अपने हाथों से प्रसाद वितरण करती है]

तिपी—आप सब लोग जाइए । पुजारी जी, आप भी जाइए ।

[सबका प्रस्थान । मन्दिर में तिपी अकेली रह जाती है । मूर्ति के सम्मुख घी के अनेक दीपक टिमटिमा रहे हैं । तिपी हाथ जोड़कर मूर्ति के सम्मुख बैठ जाती है ।]

तिपी—इस दुखिया की पुकार कब सुनोगे नाथ ! मेरे प्राणनाथ मेरे अनुरोध को ठुकराकर पाटलिपुत्र चले गए हैं । आज एक महीना बीत गया, मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला । प्रभो, इस दुखिया पर अपनी कृपा रखना । मुझे नींद में भयंकर-भयंकर सपने आते रहते हैं । मेरे स्वामी, जेठ, देवर, ननद, भाभी—सबकी रक्षा करना । हे

! उनके भाग्य में यदि कोई दुःख लिखा हो तो वह दुःख मुझे दे गदीश्वर !

[तिष्यी मूर्ति के सम्मुख सिर झुकाती है। सिर उठते ही उसकी मन्दिर के द्वार पर खड़ी एक परिचारिका पर पड़ती है।]

तिष्यी—कौन है ?

परिचारिका—मैं हूं महारानी !

तिष्यी—क्या बात है ?

परि०—पाटलिपुत्र से एक दूत आया है।

तिष्यी-(प्रसन्न होकर) पाटलिपुत्र से दूत ! उसे शीघ्रता से यहां लाओ।

[परिचारिका बाहर जाती है और बहुत ही शीघ्र दूत के साथ वापस लौट आती है।]

दूत—जय हो सम्राज्ञी !

तिष्यी—सम्राज्ञी कौन ? जल्दी कहो, पाटलिपुत्र के क्या समाचार ?

दूत—सम्राट् अशोक सकुशल हैं। उन्होंने मुझे सम्राज्ञी को राजधानी में ले आने के लिए भेजा है।

तिष्यी—(धड़कते दिल से) सम्राट् अशोक ? और मैं सम्राज्ञी ! कैसा अनर्थ है ! दूत, कहो, युवराज सुमन तो सकुशल हैं न ?

दूत—यह सब मुझे नहीं मालूम सम्राज्ञी। मुझे और कोई भी समाचार मालूम नहीं।

तिष्यी—अच्छा जाओ, जल्दी प्रस्थान की तैयारी करो।

[दूत का प्रस्थान]

[सहसा रानी की आंखों में आंसू भर आते हैं और वह भगवान् की मूर्ति के सम्मुख पुनः अपना सिर झुका देती है]

पटाक्षेप

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—वैशाली

समय—मध्याह्नोत्तर

[नगर के राजमार्ग पर अस्त-व्यस्त वेश में शीला और चित्रा खड़ी हैं। उन्हें घेरकर बहुत-से राहचलते नागरिक जमा हो रहे हैं। थोड़ी ही देर में भीड़ काफी बढ़ जाती है।]

चित्रा—(जरा ऊंचे स्थान पर खड़े होकर) वैशाली के नागरिको! हम दोनों परमात्मा का एक संदेश लेकर तुम्हारे पास आई हैं।

पहला नागरिक—ये कौन हैं?

दूसरा ना०—मुसाफिर।

तीसरा ना०—नहीं, भिक्षुणियां।

चौथा ना०—आप दोनों कौन हैं?

चित्रा—हमारा परिचय पूछते हो? मैं सम्राट् बिन्दुसार की पुत्री हूं। मेरा नाम चित्रा है। और ये? इनका परिचय तुम अभी मुझसे मत पूछो।

[सभी नागरिक विस्मयपूर्ण आदर के साथ उन दोनों की ओर देखने लगते हैं।]

चित्रा—भाइयो, मैं आप लोगों से एक भीख मांगने आई हूं।

अनेक ना०—कहिए; हम आपकी बात ध्यान से सुनेंगे।

चित्रा—मगध-साम्राज्य के नागरिको, तुम्हें मालूम है कि एक खूनी और लुटेरा व्यक्ति आज तुम्हारा सम्राट् बना हुआ है ! मुझे यह कहते लज्जा आती है कि वह खूनी मेरा अपना सगा भाई है। मगर भाइयो, मैं उसकी बहन होकर भी कर्तव्य की पुकार के सम्मुख सभी कुछ त्याग-कर निकल खड़ी हुई हूं। तुम भी अपने कर्तव्य का पालन करोगे ?

[नागरिक गम्भीर भाव से चुपचाप खड़े रहते हैं।]

चित्रा—(जरा ऊंची आवाज में) तो क्या मैं समझ लूं कि वैशाली के जगत्प्रसिद्ध वीर आज एक अत्याचारी दानव के डर से अपने कर्तव्य का ज्ञान भूल गए हैं ? वे कायर बन गए हैं ?

एक ना०—किन्तु इस विद्रोह से लाभ क्या होगा राजकुमारी ?

चित्रा—लाभ की बात पूछते हो ? नागरिको, जरा सोचकर देखो तो। आने वाली सन्तति तुम्हारे सम्बन्ध में क्या कहेगी ! वह यही तो कहेगी न, कि एक नृशंस राक्षस ने मगध-साम्राज्य के महाराजाधिराज की हत्या कर दी, वह स्वयं उस साम्राज्य का मालिक बन बैठा और साम्राज्य की करोड़ों प्रजा ने उसके विरुद्ध आवाज तक भी न उठाई। भाइयो, तुम मनुष्य हो, पशु नहीं हो। तुम क्षत्रिय हो, नपुंसक नहीं हो। तुम मगध-साम्राज्य के नागरिक हो, दास नहीं हो।

दूसरा ना०—मगर विद्रोह किया किसके लिए जाए राजकुमारी। युवराज तो अब रहे नहीं।

चित्रा—साम्राज्य के उत्तराधिकारी की बात पूछते हो ? हां, मैं आपको इस बात का जवाब दूंगी। तुम्हारे सम्राट् चले गए। मगर उनकी विवाहिता वधू तुम्हारी सम्राज्ञी, महाराज-पत्नी सीता अब भी मौजूद हैं, और तुम्हारी वे सम्राज्ञी, (सीता की ओर इंगित कर) राह के नदी-नालों को पैदल लांघकर इस दुरवस्था में स्वयं तुम्हारी शरण मांगने आई हैं। (पटाक्षेप)

[नागरिकों में उत्साह और क्षोभ की लहर-सी छा जाती है। प्रत्येक नागरिक शीला को इस वेश में देखकर रोने लगते हैं।]

शीला—(जरा ऊंचाई पर खड़े होकर कांपते स्वर में) भाइयो, मैं आज साम्राज्ञी नहीं हूं, राह की भिखारिन हूं, अनाथा हूं, विधवा हूं। मेरे पति और पिता दोनों एक-साथ चल बसे। तुम्हें छोड़कर मेरा और कोई भी नहीं है। मैं साम्राज्य नहीं चाहती थी। मैं सिर्फ उन्हें, अपने हृदय-देवता को चाहती थी। मैंने कहा था कि मैं अपनी सारी आयु उनकी चरण-सेवा करते हुए वन में ही काट देने को सहर्ष तैयार हूं। मगर तुम्हारे पापी राजा अशोक से इतना भी नहीं सहा गया। मेरे देखते-देखते, मेरे देवता का, तुम्हारे हृदय-सम्राट् का, धोखेबाजी और नृशंसता के साथ वध कर दिया गया। नागरिको, भाइयो, क्या तुम यह अत्याचार, यह अनाचार, चुपचाप सह लोगे? (आंखों में आंसू भर आते हैं)

सभी ना०—(एक साथ) नहीं, कदापि नहीं।

चित्रा—तो बस भाइयो, आज माता स्वयं अपने पुत्रों से सहायता की भीख मांगने आई है। अपने महलों और छप्परों के मोह त्यागकर माता का अनुसरण करो। आनेवाली सन्तान गर्व के साथ कहेगी: हमारे पूर्वज वीर थे, कायर नहीं थे। बोलो, वैशाली से कितने नागरिक हमारा साथ देंगे?

सभी ना०—हम सभी आपके साथ चलेंगे।

चित्रा—शाबाश वीरो! तुमने सिद्ध कर दिया कि मगध-साम्राज्य आज भी पुरुषत्व से जगमगा रहा है।

पहला ना०—हम सम्राज्ञी की सेवा में अपना सर्वस्व अर्पण कर देंगे।

दूसरा ना०—हम अत्याचारी अशोक से बदला लेंगे।

तीसरा ना०—अशोक का नाश हो !

सभी ना०—अशोक का नाश हो !

चौथा ना०—सम्राज्ञी चिरजीवी हों !

सभी ना०—सम्राज्ञी चिरजीवी हों !

चित्रा—तो भाइयो, आओ; मेरे पीछे-पीछे आओ मैं सम्पूर्ण आर्यावर्त में वह आग सुलगा दूंगी कि एक तो क्या सौ अशोक मिलकर भी उसे नहीं बुझा सकेंगे।

सभी—चलो-चलो।

[चित्रा और शीला के पीछे-पीछे सभी का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—आचार्य उपगुप्त का आश्रम

समय—प्रभात

[आचार्य उपगुप्त अपनी कुटिया के द्वार पर गम्भीर मुद्रा धारण किए बैठे हैं। उनके सम्मुख उनका प्रधान शिष्य शाकटायन खड़ा है]

शाकटायन—वे लोग आज ही रात को यहां से कूच कर जाएंगे।

उपगुप्त—तुमने स्वयं उन्हें देखा है शाकटायन ?

शाक०—जी हां आचार्य।

उप०—उनके साथ इस समय कितने व्यक्ति होंगे ?

शाक०—कम से कम पचास हजार।

उप०—सचमुच !

शाक०—सचमुच आचार्य ! राजकुमारी शीला और चित्रा दोनों में एक आश्चर्यजनक तेज आ गया है, भगवन् ! वे जहां भी जाती हैं, सम्पूर्ण नागरिक अपने सब काम-काज छोड़कर उनके साथ हो लेते हैं। मैंने इच्छा थी इस उमड़ती-सी सेना में जाकर और मुझे भी देखें हैं।

[नागरिकों में उत्साह और क्षोभ की लहर-सी छा जाती है। अनेक नागरिक शीला को इस वेश में देखकर रोने लगते हैं।]

शीला—(ज़रा ऊंचाई पर खड़े होकर कांपते स्वर में) भाइयो, मैं आज सम्राज्ञी नहीं हूं, राह की भिखारिन हूं, अनाथा हूं, विधवा हूं। मेरे पति और पिता दोनों एक-साथ चल बसे। तुम्हें छोड़कर मेरा और कोई भी नहीं है। मैं साम्राज्य नहीं चाहती थी। मैं सिर्फ उन्हें, अपने हृदय-देवता को चाहती थी। मैंने कहा था कि मैं अपनी सारी आयु उनकी चरण-सेवा करते हुए जेल में ही काट देने को सहर्ष तैयार हूं। मगर तुम्हारे पापी राजा अशोक से इतना भी नहीं सहा गया। मेरे देखते-देखते, मेरे देवता का, तुम्हारे हृदय-सम्राट् का, धोखेबाज़ी और नृशंसता के साथ वध कर दिया गया। नागरिको, भाइयो, क्या तुम यह अत्याचार, यह अनाचार, चुपचाप सह लोगे? (आंखों में आंसू भर आते हैं)

सभी ना०—(एक साथ) नहीं, कदापि नहीं।

चित्रा—तो बस भाइयो, आज माता स्वयं अपने पुत्रों से सहायता की भीख मांगने आई है। अपने महलों और छप्परों के मोह त्यागकर माता का अनुसरण करो। आनेवाली सन्तान गर्व के साथ कहेगी: हमारे पूर्वज वीर थे, कायर नहीं थे। बोलो, वैशाली से कितने नागरिक हमारा साथ देंगे?

सभी ना०—हम सभी आपके साथ चलेंगे।

चित्रा—शाबाश वीरो! तुमने सिद्ध कर दिया कि मगध-साम्राज्य आज भी पुरुषत्व से जगमगा रहा है।

पहला ना०—हम सम्राज्ञी की सेवा में अपना सर्वस्व अर्पण कर देंगे।

दूसरा ना०—हम अत्याचारी अशोक से बदला लेंगे।

तीसरा ना०—अशोक का नाश हो !

सभी ना०—अशोक का नाश हो !

चौथा ना०—सम्राज्ञी चिरंजीवी हों !

सभी ना०—सम्राज्ञी चिरंजीवी हों !

चित्रा—तो भाइयो, आओ, मेरे पीछे-पीछे आओ मैं सम्पूर्ण आर्यावर्त में वह आग सुलगा दूंगी कि एक तो क्या सौ अशोक मिलकर भी उसे नहीं बुझा सकेंगे ।

सभी—चलो-चलो ।

[चित्रा और शीला के पीछे-पीछे सभी का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—आचार्य उपगुप्त का आश्रम

समय—प्रभात

[आचार्य उपगुप्त अपनी कुटिया के द्वार पर गम्भीर मुद्रा धारण किए बैठे हैं । उनके सम्मुख उनका प्रधान शिष्य शाकटायन खड़ा है]

शाकटायन—वे लोग आज ही रात को यहां से कूच कर जाएंगे ।

उपगुप्त—तुमने स्वयं उन्हें देखा है शाकटायन ?

शाक०—जी हां आचार्य ।

उप०—उनके साथ इस समय कितने व्यक्ति होंगे ?

शाक०—कम से कम पचीस हजार ।

उप०—सचमुच !

शाक०—सचमुच आचार्य ! राजकुमारी शीला और चित्रा दोनों में एक आश्चर्यजनक तेज आ गया है, भगवन् ! वे जहां भी जाती हैं, सम्पूर्ण नागरिक अपने सब काम-काज छोड़कर उनके साथ हो लेते हैं । मैंने प्रजा को इस उन्मादित-सी सेना में जाते और घूमते देखे हैं ।

[नागरिकों में उत्साह और क्षोभ की लहर-सी छा जाती है। अनेक नागरिक शीला को इस वेश में देखकर रोने लगते हैं।]

शीला—(ज़रा ऊंचाई पर खड़े होकर कांपते स्वर में) भाइयो, मैं आज सम्राज्ञी नहीं हूं, राह की भिखारिन हूं, अनाथा हूं, विधवा हूं। मेरे पति और पिता दोनों एक-साथ चल बसे। तुम्हें छोड़कर मेरा और कोई भी नहीं है। मैं साम्राज्य नहीं चाहती थी। मैं सिर्फ उन्हें, अपने हृदय-देवता को चाहती थी। मैंने कहा था कि मैं अपनी सारी आयु उनकी चरण-सेवा करते हुए जेल में ही काट देने को सहर्ष तैयार हूं। *मगर तुम्हारे पापी राजा अशोक से इतना भी नहीं सहा गया।* मेरे देखते-देखते, मेरे देवता का, तुम्हारे हृदय-सम्राट् का, धोखेबाजी और नृशंसता [redacted] साथ वध कर दिया गया। नागरिको, भाइयो, क्या तुम *यह अत्याचार, यह अनाचार, चुपचाप सह लोगे? (आंखों में आंसू भर आते हैं)*

सभी ना०—(एक साथ) नहीं, कदापि नहीं।

चित्रा—*तो बस भाइयो, आज माता स्वयं अपने पुत्रों से सहायता की* भीख मांगने आई है। अपने महलों और छप्परों के मोह त्यागकर माता का अनुसरण करो। आनेवाली सन्तान गर्व के साथ कहेगी: हमारे पूर्वज वीर थे, *कायर नहीं थे। बोलो, वैशाली से कितने नागरिक हमारा* साथ देंगे?

सभी ना०—*हम सभी आपके साथ चलेंगे।*

चित्रा—*शाबाश वीरो! तुमने सिद्ध कर दिया कि* आज भी पुरुषत्व से जगमगा रहा है।

पहला ना०—हम सम्राज्ञी की सेवा में अपना देंगे।

दूसरा ना०—हम अत्याचारी अशोक से

तीसरा ना०—अशोक का नाश हो !

सभी ना०—अशोक का नाश हो !

चौथा ना०—सम्राज्ञी चिरजीवी हों !

सभी ना०—सम्राज्ञी चिरजीवी हों !

चित्रा—हां भाइयो, आओ; मेरे पीछे-पीछे आओ मैं सम्पूर्ण आर्यावर्त में वह आग सुलगा दूंगी कि एक तो क्या सौ अशोक मिलकर भी उसे नहीं बुझा सकेंगे।

सभी—चलो-चलो।

[चित्रा और शीला के पीछे-पीछे सभी का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—आचार्य उपगुप्त का आश्रम

समय—प्रभात

[आचार्य उपगुप्त अपनी कुटिया के द्वार पर गम्भीर मुद्रा धारण किए बैठे हैं। उनके सम्मुख उनका प्रधान शिष्य शाकटायन खड़ा है]

शाकटायन—वे लोग आज ही रात को वहां से कूच कर जाएंगे।

उपगुप्त—तुमने स्वयं उन्हें देखा है शाकटायन ?

शाक०—जी हां आचार्य।

उप०—उनके साथ इस समय कितने व्यक्ति होंगे ?

शाक०—कम से कम पचीस हजार।

उप०—सचमुच !

शाक०—सचमुच आचार्य ! राजकुमारी शीला और चित्रा दोनों में एक आश्चर्यजनक तेज आ गया है, भगवन् ! वे जहां भी जाती हैं, सम्पूर्ण नागरिक अपने सब काम-काज छोड़कर उनके साथ हो लेते हैं। मैंने जनता की इस असंगठित-सी सेना में लंगड़े और लूले भी देखे हैं।

पदाहिक्र और बूढ़े भी देखे हैं। सम्पूर्ण वैशाली प्रान्त में एक भी
रिक ऐसा नहीं जिसने राजकुमारियों की पुकार सुनी हो और
सम्राट् से बदला लेने के लिए विचलित न हो उठा हो। नागरि
असाधारण जोश फैल गया है भगवन् !

उप०—वे लोग पदाहिक्रों को क्यों अपने साथ लिए आ
शाकटायन ?

शाक०—इसका अभिप्राय है आचार्य, कि जनता जब इन
हीनों में भी अशोक के खिलाफ इतना उत्साह देखती है, तब वा
विद्रोह में और भी अधिक अनुभूति और जोश के साथ सम्मिलित होंगे

उप०—यह बात सचमुच भयावहपूर्ण है। व्यर्थ ही देश-भर में
की नदियाँ बहेंगी। युवराज सुमन तो रहे नहीं, फिर इस तरह
का रक्तपात करने से क्या लाभ ?

शाक०—जब सम्राट् की अपनी सगी बहन और युवराज सुमन
वाग्दत्ता पत्नी—दोनों मिलकर इस विद्रोह का संचालन कर रही
तब इस तरह के सवाल किसी के मन में पैदा ही नहीं हो सकते।

उप०—तुम ठीक कहते हो शाकटायन ! मुझे राजकुमारी की
के पास ले चल सकोगे ? आचार्य दीपवर्धन मेरे घनिष्ठ मित्र थे। अ
उनकी कन्या को देखूं तो !

शाक०—किस समय चलना होगा आचार्य ?

उप०—इसी समय।

शाक०—मैं अभी तैयार होकर आया भगवन् ! (प्रस्थान)

[दृश्य बदलता है]

*र के एक विशाल उद्यान में, एक घने वृक्ष की छाया में विरह
ी मूर्तस्वरूप-सी शीला चुपचाप शून्य दृष्टि से ऊपर की ओर
ताक रही है। आम्रवन में हजारों आदमी जमा हैं।*

सब लोग अपने भोजन की तैयारियों में व्यस्त हैं।
कुछ दूरी पर चित्रा दो-एक नागरिक नेताओं
से बातें कर रही है। इसी समय
आचार्य उपगुप्त का प्रवेश]

उपगुप्त—(निकट आकर) आप ही का नाम शीला है ?

[शीला चौंककर उपगुप्त की ओर देखती है। सामने एक बौद्ध भिक्षु को पाकर वह श्रद्धासहित नमस्कार करती है।]

शीला—जी हां, मेरा ही नाम शीला है।

उप०—भगवान् बुद्ध तुम्हें शान्ति दें बेटी !

शीला—(सहसा खड़ी होकर) आप कौन हैं धम्मासिन् ! आपकी वाणी में जैसे अमृत भरा है। आपके इस आशीर्वाद ने मेरे दग्धहृदय को चन्दन की शीतलता पहुंचाई है। आप कौन हैं ?

उप०—मेरा नाम उपगुप्त है।

शीला—पिताजी से मैं बहुत बार आपका जिक्र सुन चुकी हूं भगवन् !

चित्रा—(निकट आकर) आचार्य उपगुप्त को मेरा प्रणाम हो !

उप०—तुम्हीं राजकुमारी चित्रा हो ?

चित्रा—जी हां, हमारा यह परम सौभाग्य है कि हम आपके दर्शन कर सकीं।

उप०—मेरा आश्रम यहां से निकट ही है राजकुमारी ! मैं कुमारी शीला को अपने यहां आने के लिए निमन्त्रण देने आया हूं।

चित्रा—मगर हम लोग तो शीघ्र ही रवाना होने वाले हैं आचार्य !

उप०—मेरे अनुरोध से क्या तुम लोग यहां दो-चार दिन और नहीं ठहर सकोगे ?

चित्रा—जैसी स्वामी की आज्ञा हो।

उप०—शीला बेटी ! मेरा निमन्त्रण स्वीकार करोगी ? तुम्हारे पिता आचार्य दीपवर्धन मेरे बचपन के मित्र थे। वे मुझे भाई कहकर पुकारा करते थे।

[शीला चित्रा की ओर देखती है।]

चित्रा—आचार्य, शीला दिन-प्रतिदिन कमजोर होती जा रही है। मैं चाहती थी कि किसी अच्छे चिकित्सक से इसकी परीक्षा करवाऊं। सुना है, आपके आश्रम में पहुंचकर असाध्य से असाध्य रोगी भी रोग-मुक्त हो जाते हैं। तब तीन दिनों के लिए शीला को आप अपने आश्रम में ले जाइए आचार्यजी ! हम लोग इतने समय तक यहां और सैन्य-संग्रह करते रहेंगे।

शीला—(चित्रा से) बहन ! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे आचार्य उपगुप्त के रूप में मैंने अपने पिताजी को पुनः पा लिया ! इतनी करुणामयी और इतनी दयापूर्ण दृष्टि तो मैंने और किसी की नहीं देखी। (आंखों में आंसू भर आते हैं।)

चित्रा—अधीर न होओ बहन !

[आचार्य उपगुप्त शीला के सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद देते हैं और वह उनके चरणों में झुक जाती है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—आचार्य उपगुप्त का आश्रम

समय—सांझ

[आचार्य उपगुप्त के सम्मुख शीला बैठी है।]

उपगुप्त—पिछली सभी बातें बिलकुल भूल जाओ बेटी !

—मैं बहुत प्रयत्न करती हूं, किन्तु मुझे सफलता नहीं मिलती

उप०—भूतकाल की सम्पूर्ण स्मृतियों को एक जगह बन्द करके उस पर ताला लगा दो। फिर उधर झांककर देखो भी नहीं। समझ लो कि तुम्हारा जन्म हुए अभी सिर्फ तीन ही दिन हुए हैं। यह आश्रम तुम्हारी जन्मभूमि है। मैं तुम्हारा पिता हूं। इस आश्रम के निवासी तुम्हारे भाई-बहन और बन्धु हैं।

शीला—रह-रहकर मेरे जी में शोक की प्रबल आंधी-सी उठ खड़ी होती है, उसे कैसे दमन करूं आचार्य ?

उप०—मैंने कहा न, कि समझ लो, तुम्हारे कभी कुछ था ही नहीं। वे सब लोग चले गए, तो उनके साथ ही साथ वह शीला भी चली गई। वह शीला चली गई, जो लाड़-प्यार करती थी और शासन करती थी। उसकी जगह एक दूसरी शीला आ गई है, जो उपगुप्त जैसे फकीर की बेटी है, सेवा करना जिसका व्रत है और परोपकारी जिसकी साधना है। जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया। यह दूसरा अध्याय है।

शीला—और मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की तेज ज्वाला भभक उठती है, उसका क्या करूं भगवन् !

उप०—तुम्हारी इस प्रतिहिंसा प्रवृत्ति का स्वरूप क्या है शीला ?

शीला—यही कि जिस व्यक्ति ने छल-कपट से, धोखेबाजी से और नृशंसता से मेरा सर्वस्व हरण कर लिया है, वही व्यक्ति आज मगध-साम्राज्य का भाग्यविधाता बना हुआ है। मेरे जी में आता है कि अपना सर्वस्व होमकर भी यदि मैं उस व्यक्ति का घमण्ड तोड़ सकूं, उससे बदला ले सकूं, तो इससे मेरे दग्धहृदय को शान्ति प्राप्त होगी।

उप०—शान्ति की यह कल्पना झूठी मृगतृष्णा के समान है बेटी !

शीला—अपने जी को कैसे समझाऊं आचार्य ?

उप०—इस विश्व में सभी जगह छल, कपट, हत्या और अपहरण

हो रहा है। प्रकृति अपने विधान द्वारा प्राणि-मात्र को अपहरण का सन्देश दे रही है। यहां बलशाली निर्बल को खा जाता है, बड़े जीवों का आहार छोटे जीव हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। सांप और छिपकलियां कीड़े-पतंगों को खाकर जिन्दा रहते हैं। जहां तक जिसका बस चलता है, अपहरण करता है। प्रकृति के इन विधानों से मनुष्य ने भी अपहरण का पाठ पढ़ लिया है। हमारे मनुष्य-समाज में भी धनी गरीब को चूसता है, राजा प्रजा के बल पर शक्ति-शाली बनता है, जमींदार किसानों के अधिकार का अपहरण करता है, विद्वान मूर्खों को अपना शिकार बनाता है। अपहरण के इस विश्व-व्यापी षड्यन्त्र में तुम भी क्या इस षड्यन्त्र का एक पुर्जा बनकर रहना चाहती हो शीला ?

शीला—मैं आपकी बात समझी नहीं गुरुजी !

उप॰—अपने को पहचानो बेटी ! तुम चेतन हो, तुम स्वतन्त्र हो, अपने ज्ञान को उद्बुद्ध करो। तब तुम्हें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि छल-कपट और हत्या से भरी इस दुनिया का स्वयं भी एक पुर्जा बन जाने में आनन्द कोई नहीं है। इस तरह हत्या और अपहरण करके व्यक्ति अपने को और भी अधिक छोटा, और भी अधिक कायर, और भी अधिक दुःखी बना लेता है। यह शान्ति का मार्ग नहीं है शीला ! भगवान् तथागत का उपदेश है कि अपने को दूसरों में पहचानो; इसी से तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी।

शीला—यह किस तरह होगा आचार्य ?

उप॰—देखो बेटी, देने में जो सुख है वह लेने में नहीं है। माता अपने पुत्र के लिए, स्त्री अपने पति के लिए जो स्वार्थ त्याग करती है, उससे बढ़कर सुख इस जगत् में और कहां मिलेगा। हृदय की जिस कोमलतम अनुभूति का नाम 'प्रेम' है। वह सिर्फ 'देना ही देना' नहीं तो

और क्या है ? फिर भी कौन कह सकता है कि प्रेम से बढ़कर मीठी और सुखपूर्ण अनुभूति दुनिया में कोई दूसरी भी है। दान की यह प्रवृत्ति मनुष्य को ऊंचा बनाती है। तुम प्रतिहिंसा की बात कहती हो शीला। प्रतिहिंसा किससे ? इस दुनिया में किसका अहंकार अक्षुण्ण बना रहा है ? किस मनुष्य के दिल में कोई दर्द नहीं है, कोई टीस नहीं है ? इस दुर्बल मनुष्य के प्रति प्रतिहिंसा की भावना रखने का अभिप्राय हो क्या है ? तुम अपने ज्ञान को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न करो। तुम्हें यह बात समझ में आ जाएगी कि इस दुःखी दुनिया के घावों में मरहमपट्टी बन जाने में जो सुख है, वह घाव लगाने में नहीं है। समझीं बेटी !

शीला—मैं प्रयत्न करूंगी कि आपकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करूं।

उप०—और देखो शीला ! तुम सुमन को चाहती थीं।

शीला—यह बात भी बताने की आवश्यकता होगी आचार्य ?

उप०—ठीक है, परन्तु बताओ, तुम्हारे हृदय का वह स्नेह-भाव अब कहां है ?

शीला—जब वे ही नहीं रहे !

उप०—सुमन की देह तो सचमुच नहीं रही बेटी ! मगर उनके प्रति तुम्हारे हृदय की समर्पण-भावना के भाव तो अब भी तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं। सुमन को तुम सचमुच चाहती हो, तो वे दुनिया के दुःखी और पीड़ित व्यक्तियों के रूप में तुम्हें दिखाई देंगे। यह कठिन साधना निभा सकोगी शीला ? यह कर सकोगी तो घट-घट में तुम्हें सुमन के दर्शन होंगे।

शीला—मैं प्रयत्न करूंगी पिताजी !

उप०—भगवान् बुद्ध तुम्हें शान्ति दें (कुछ क्षण रुककर) मगर शीला, यहां आज तुम्हें तीन दिन पूरे हो गए। राजकुमारी चित्रा आज

तुम्हारी प्रतीक्षा में होंगी।

शीला—मैं अब वहां नहीं जाऊंगी। आपके आश्रम को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगी। बहन चित्रा को यह सन्देश भेज देती हूं कि वे विद्रोह करने का इरादा छोड़ दें और स्वयं पाटलिपुत्र को लौट जाएं। मैं यहां से और कहीं नहीं जाऊंगी।

उप०—मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं बेटी! तुम्हारा संकल्प पूरा हो और तुम्हें सच्ची शान्ति प्राप्त हो!

चौथा दृश्य

स्थान—कामरूप की उपत्यका का एक गांव

समय—मध्याह्नपूर्व

[एक हरे-भरे ऊंचे पहाड़ की तराई में भीलों का गांव बसा हुआ है। गांव के बाहर स्वच्छ जल की एक झील है। इस झील के किनारे बरगद के एक घने पेड़ की छाया में राजकुमार तिष्य बहुत-से भील बालकों के बीच बैठा है। भीलों का सरदार भी वहां मौजूद है। आसमान में बादल छाए हुए हैं। झील के पानी में हंस केलि कर रहे हैं। वृक्षों के घने झुरमुटों में कहीं अदृश्य रूप से बैठी कोयल कुहुक रही है।]

एक भील बालक—हम सब लोग तुम्हें राजकुमार क्यों कहते हैं।

तिष्य—मेरे पिता एक राजा थे।

बालक—हां हां, जरूर।

तिष्य—एक राजा था। ...एक बहुत बड़ा राजा था। इतना बड़ा जितना और किसी कहानी का नहीं था। उसके तीन लड़के थे। जब वह मरने लगा तो उसने अपने बड़े लड़के को बुलाकर कहा कि मैं तो अब चलता हूं। मेरे बाद तुम अपने छोटे भाइयों को अपने पुत्रों के समान समझना। बड़ा भाई राजा के पास था, बाकी दोनों भाई बहुत दूर परदेश में गए हुए थे। जब राजा मर गया तो बड़े लड़के को बहुत दुःख हुआ। उसने अपना दुःख हल्का करने के लिए अपने दोनों भाइयों को अपने पास बुला भेजा। मंझला भाई परदेस से पहले वापस लौटा। बड़े भाई को जब उसके आने का समाचार मिला तो वह उसका स्वागत करने के लिए महल से बाहर निकला। अपने भाई को देखते ही उसका आलिंगन करने के लिए बड़े भाई ने अपनी बाहुएं फैला दीं। मंझले भाई ने उसी समय फुर्ती के साथ एक छुरा निकाला और अपने बड़े भाई की छाती में भोंक दिया।

अनेक बा०—(भयभीत होकर) ओहो! उसके बाद ?

तिष्य—बड़ा भाई मर गया और मंझला भाई उसकी जगह राजा बन बैठा।

एक बा०—राक्षस कहीं का! फिर ?

तिष्य—सबसे छोटा भाई अभी मार्ग में ही था कि उसे यह समाचार मिला। वह घबरा गया, उसे राज्य से ही घृणा हो गई। वह उसी समय जंगलों में भाग गया।

एक बा०—ओह, बड़ा डरपोक था!

तिष्य—डरपोक क्यों था। वह करता ही क्या ?

एक बा०—अपने भाई से बदला लेता।

तिष्य—भाई से बदला लेता! खैर, जाने दो। अब यह खेल शुरू

करो। बोलो, राजा कौन बनेगा ?

एक बा०—मैं राजा बनूगा ?

तिष्य—बड़ा भाई कौन बनेगा ?

दूसरा बा०—मैं बनूगा।

तिष्य—मझला भाई कौन बनेगा ?

[सब बालक चुपचाप बैठे रहते हैं]

तिष्य—मंझला भाई बनने को कोई तैयार नहीं ?

तीसरा बा०—वह राक्षस था !

चौथा बा०—अच्छा, आप क्या बनेंगे ?

तिष्य—मैं तीसरा भाई बनूगा।

एक बा०—(हंसकर) मगर आप भागेंगे कैसे ?

तिष्य—देखना, मैं कितना अच्छा भागता हूं। अच्छा मंझला भाई बनने को कोई तैयार नहीं है ?

[सब बालक चुपचाप बैठे रहते हैं]

[इसी समय वर्षा शुरू हो जाती है। बालक हू-हा करते हुए भाग जाते हैं। तिष्य भी उठ खड़ा होता है और उस वर्षा में ही कुछ दूरी पर जाकर झील के किनारे खड़ा हो जाता है]

तिष्य—कितना सुन्दर दृश्य है ! बादलों से घिरा यह ऊंचा पहाड़ कितना सुहावना जान पड़ता है ! झील के इस शान्त और स्वच्छ जल पर वर्षा की ये नन्हीं-नन्हीं बूंदें इस तरह पड़ रही हैं, जैसे कोई अदृश्य हाथ एक चिकने-से समतल विशाल स्तर पर सैकड़ों-हजारों छोटी-छोटी कीलें एक साथ जड़ रहा हो। और अपने पंख फैला कर इधर-उधर तैरते हुए ये हंस तो जीवित कला के समान जान पड़ते हैं। सब ओर सन्नाटा है, शान्ति है, व्यवस्था है और सुन्दरता है।

"और मेरा भाई अशोक ! वह सचमुच राक्षस है ! अशोक, तुमने

मुझे मनुष्य से घृणा करना सिखा दिया था, परन्तु इन भीलों ने पुन मेरे हृदय में यह धारणा बना दी है कि मनुष्य स्वभाव से सच्चा निष्कपट और उदार हृदय है।…इन्हें हम असभ्य कहते हैं! हमारे सभ्यता का आधार ही छल, कपट और हृदय दम्भ जो है। सरलता और भावुकता को कम करते जाने का नाम ही सभ्यता नहीं तो और क्या है।

…और मैं यहां कहां? कोई नहीं जानता कि राजकुमार तिष्य अब भी जिन्दा है! अच्छा है, मैं इसी में खुश हूं। इन लोगों का राजकुमार बनकर रहने में सचमुच आनन्द है। नियति! भाग्य! इसे और क्या कहूं! मगर वह कापालिक! वह सजीव व्यक्ति था। उसने जो कुछ कहा, सब सच निकला। भाग्य की बात है कि मेरा मन्त्री भी उसी दिन ठीक साठवें दिन ही मरा!

[सहसा वर्षा बड़े जोरों से पड़ने लगती है। तिष्य को दूर से एक अस्पष्ट-सी आवाज सुनाई पड़ती है।]

सरदार—(नैपथ्य से) राजकुमार! तुम कहां हो?

तिष्य—मैं अभी आया सरदार! (प्रस्थान)

पांचवां दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के राजमहल का अन्तःपुर

समय—गोधूलिवेला

[सम्राज्ञी तिष्ये बहुत ही उदासी-भरा गम्भीर भाव धारण किए बैठी है, और अन्तःपुर का प्रधान परिचारक उनके सामने खड़ा है।]

परिचारक—उज्जयिनी की यह गायिका बड़े ही करुण गीत गा सुनाती है सम्राज्ञी! उसका कण्ठस्वर भी बड़ा मधुर है। यदि … दें तो वह आपके सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन कर अपने

को कृतकृत्य समझेगी।

सम्राज्ञी—मुझे आजकल संगीत, नृत्य आदि कुछ भी पसन्द नहीं। वे युद्धक्षेत्र में खतरे से घिरे हैं और मैं यहां बैठकर संगीत का आनन्द लूं ?

परि०—वह आपके दर्शनों के लिए बड़ी उत्सुक है सम्राज्ञी।

तिष्य—कह दो मेरा जी अच्छा नहीं है।

परि०—(उदास भाव से) जैसी आपकी आज्ञा! (जाने लगता है)

तिष्य—अच्छा, उसे यहां भेज दो।

परि०—आपका अनुग्रह! (प्रस्थान)

तिष्य—कलिंग का यह महायुद्ध, मालूम होता है, अभी बरसों तक और चलेगा। इतना समय बीत गया, और किसी पक्ष के कमज़ोर पड़ने के लक्षण ही नज़र नहीं आते। परमात्मा उनकी रक्षा करें।

[गायिका का प्रवेश। वह सम्राज्ञी को प्रणाम करती है]

सम्राज्ञी—यहां कैसे आना हुआ ?

गायिका—संसार भर का ऐसा कौन सा कलाविद् होगा, जिसके जी में यह प्रबल इच्छा उत्पन्न न हुई हो कि वह मरने से पहले एक बार पाटलिपुत्र के दर्शन कर ले। विश्व-भर की विद्याओं और कलाओं का केन्द्र यह नगर सचमुच बड़ा गरिमाशाली है। मुझे प्रतीत होता है, जैसे मैं अपने कल्पनामय स्वप्न देश में आ गई हूं।

सम्राज्ञी—आपके संगीत की बड़ी प्रशंसा सुनी है। आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गायिका—कुछ सुनेंगी सम्राज्ञी!

सम्राज्ञी—सुनाइए।

[गायिका गाती है]

गीत

नही चाह कुछ न रही तृषा, न हृदय मे कोई गुबार है
सभी मिट गईं मेरी हसरतें, न मुझे घृणा न प्यार है।
कभी मैं भी मानो तरंग थी; मेरे दिल था—एक उमंग थी,
न समझ सकी कि उजड़ गई, क्यों यह जिन्दगी की बहार है।
न रुपहला चाँद जहाँ खिला, न सितारा है—न दिया जला,
मेरी ज़िन्दगी है कि रात है, जहाँ घोर तम का प्रसार है।
न मै ले सकी प्रतिशोध ही—न मरी, मैं जिन्दा बनी रही
मुझे प्यास खून की क्यों नही?—मेरी जीत है कि यह हार है
मेरा दिल किसी ने बदल दिया, कि न जाने क्या मुझे हो गया
मुझे शोक है नही कुछ दया, रहा बदले का न विचार है।

तिषी—दुनिया मे जो करुण से भी करुण दृश्य हैं, यह उन सबसे बढ़कर करुण है! ओह, अभागिनी विभा! तुम्हे मैं क्या कहकर आश्वासन दूं!

[इसी समय कुणाल रो पड़ता है! तिषी पुचकारकर उसे गोद मे उठा लेती है]

छठा दृश्य

स्थान—तक्षशिला का राजपथ

समय—सायंकाल

[नगर मे सब कही मातम-सा छाया हुआ है। राजमार्ग पर बहुत कम लोग आते-जाने दिखाई दे रहे हैं। एक हाथ कटा भिखारी एक बालक और एक बालिका को साथ लिए राजमार्ग के किनारे भीख माग रहा

गीत

नहीं चाह कुछ न रही तृषा, न हृदय मे कोई गुबार है
सभी मिट गईं मेरी हसरतें, न मुझे घृणा न प्यार है।
कभी मैं भी मानो तरंग थी; मेरे दिल का—एक उमंग थी,
न समझ सकी कि उजड़ गई, क्यों यह जिन्दगी की बहार है।
न रुपहला चांद जहा खिला, न सितारा है—न दिया जला,
मेरी जिन्दगी है कि रात है, जहा घोर तम का प्रसार है।
न मै ले सकी प्रतिशोध हो—न मरी, मैं जिन्दा बनी रही
मुझे प्यास खून की क्यों नहीं?—मेरी जीत है कि यह हार है
मेरा दिल किसी ने बदल दिया, कि न जाने क्या मुझे हो गया
मुझे शोक है नहीं कुछ दया, रहा बदले का न विचार है।

तिष्‍यी—दुनिया में जो करुण से भी करुण दृश्य है, यह उन सबसे बढ़कर करुण है! ओह, अभागिनी क्षिप्रा! तुम्हें मैं क्या कहकर आश्वासन दूं!

[इसी समय कुणाल रो पड़ता है! तिष्‍यी पुचकारकर उसे गोद में उठा लेती है]

छठा दृश्य

स्थान—तुशाली का राजपथ

समय—सायकाल

[नगर मे सब कहीं मातम-सा छाया हुआ है। राजमार्ग पर बहुत कम लोग आते-जाते दिखाई दे रहे हैं। एक हाथ कटा भिखारी एक बालक और एक बालिका को

है। दोनों बच्चे एक गीत गा रहे हैं।]

गीत

गगन से भरकर श्याम बदली झुकी है, किन्तु मन्दिर—पुर छोड़ी उठी।
न आए भिखारी अभी तक नगर से, किन्तु दीन कन्या अकेली खड़ी है
अभी दूर तक हाय! सुनसान वन है, उमड़ती चली आ रही है अंधे
सभी आ चुके हैं, गृहों पर न आए, बड़ी हाय! कब तक लगाओगे देरी।
चलो छोड़ आओ पिता दुखिनी के, उन्हें आज कुछ अन्न-जल भी नहीं है।
दुखी है बड़ी माँ, न है बन्धु-भगिनी, तुम्हीं में बसे प्राण वह जो रही है।
गरजने लगे मेघ, बूंदिया टपकती, हवा सरसराती सरकती चली है।
कभी कौंधती चौंध नागिन सरीखी, गगन बीच बिजली चमक ले चली है।
नगर के इधर हों कहीं गह्वर में, कि नीचे किसी पेड़ के हों भिखारी,
कहीं भीगते आ रहे हों न पथ पर, यही सोचती मार्ग देखे बिचारी।
धरा-व्योम पर, इस हृदय बीच, बाहर, चतुर्दिक सघन तम बिछा जा रहा है।
चमकती कभी बीच में चन्द घन है—न उत्तर कहीं से कोई आ रहा है।
नहीं आए बिटिया!—बड़ी राह सूनी, किसे ताकती द्वार पर तू खड़ी है,
चली आ, उधर बैठ भीतर सम्हलकर, विकट मेघ-गर्जन भयानक बड़ी है।
नहीं आज दुर्दिन में कोई सहायक, खड़ी बालिका इस विजन में अकेली,
हटा मन्थनम, थाम बैठी हृदय को, अला से अनिक दीप कर ले हथेली।
कहां ध्यान है? गूढ़ चिन्ता है किसकी?—किसे सोचती तू सिसकती खड़ी है?
किसे खोजती इस अंधेरी मे दुखिया! मधुर याद किस गोद की इस घड़ी है!!

[इसी बीच में पांच-छः पथिक उस भिखारी के निकट खड़े हो गए हैं।]

भिखारी—भगवान् के नाम पर कुछ दया करो बेटा!

पहला पथिक—इन बच्चों के स्वर में अभी से कितनी कसक और कितनी वेदना भरी है!

के सम्मुख सोने का ढेर लग गया होता ।

तीसरा पथिक—तुम कौन हो भिखारी ?

भिखारी—मुझ गरीब का परिचय जानकर क्या करोगे ?

ती० पथिक—यह गीत इन बच्चों को किसने सिखाया है ?

भिखारी—मैंने ।

प० पथिक—(आश्चर्य से) तुमने ! तुमने यह करुण गीत कहां सुना ?

भिखारी—यह मेरा ही बनाया हुआ है ।

प० पथिक—भिखारी, तुम सच-सच कहो, तुम कौन हो ?

भिखारी—बेटा, कभी मैं तुम्हारी की सेना के नायकों में गिना जाता था · अब तो मैं भिखारी ही हूं !

दू० पथिक—ओहो ! प्रतीत होता है, तुम्हारे हाथ इसी युद्ध में जाते रहे हैं ।

भिखारी—महाराज पर, देश पर, जन्मभूमि पर, विपद आई हुई है बेटा ! मगर मैं अब लाचार हो गया हूं । इस तरह भीख मांगने के अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकता हूं ! (आंखों में आंसू भर आते हैं)

चौथा पथिक—तुम्हें युद्ध में चोट कब लगी थी ?

भिखारी—गत वर्ष ।

चौ० पथिक—उसके बाद ?

भिखारी—उसके बाद, चिकित्सालय से विदा होते ही मुझे छुट्टी दे दी गई । मैं और कर भी क्या सकता था बेटा । युद्धभूमि से घर चला आया । तीन महीनों तक मुझे राज्य की ओर से गुज़ारे लायक धन मिलता रहा । परन्तु उसके बाद वह बन्द हो गया । हमारा देश खतरे मे है । राजकोष खाली हो गया है । सारे राज्य में जवान आदमी देखने को भी नहीं मिलते । सब तरफ महामारी और अकाल का आधिपत्य

है। इस दशा में मैं महाराज को क्यों दोष दूं बेटा ! यह तो मेरा कर्म-फल है।

प० पथिक—इन बच्चों की मां नहीं है क्या ?

भिखारी—इनकी मां को मरे आज छः महीने हो गए। वह बेचारी जब तक जीती रही, उसने हमें भीख नहीं मांगने दी। वह बड़े कुलीन घर की लड़की थी बेटा ! मगर उसके सम्बन्धी इसी युद्ध में काम आ चुके थे। वह जब तक रही, स्वयं भूखी रहकर इन बच्चों का पेट पालती रही। स्वयं सब तकलीफें उठाकर उसने हमें तकलीफों से बचाया। मगर अन्त में वह इतनी कमजोर हो गई कि वह बीमार पड़ गई। मैं कुछ भी न कर सका और वह देवी मेरे देखते-देखते मुझे सदा के लिए छोड़ गई। उसके बाद मैंने लाचार होकर यह पेशा स्वीकार कर लिया। और करता भी तो क्या।

प० पथिक—तुम कुछ पा जाते हो बाबा ?

भिखारी—कुछ नहीं मिलता, यह तो कैसे कहूं। तुखाली के नाग-रिक बड़े दयावान् हैं। वे गरीब की, अपाहिज की, अनाथ की पुकार अवश्य सुनते हैं। मगर अब तो यहां जिन्दा आदमी ही कितने बचे हैं ? और जो बचे हैं, उनमें से कितने ऐसे हैं, जिनमें एक सिक्का भी देने की सामर्थ्य बाकी हो। अभी तो मेरा काफी अच्छा हाल है। इन बच्चों पर, इनकी आवाज पर, लोग तरस खाते हैं। परन्तु मुझे ऐसे लोगों का भी पता है, जो कभी तुखाली के सम्पन्न नागरिक हुआ करते थे, आज वे भूख से तड़प-तड़पकर जान दे रहे हैं।

[सभी पथिक उस भिखारी को कुछ न कुछ देते हैं।]

भिखारी—भगवान् तुम्हारा भला करे बेटा !

[प्रस्थान]

सातवां दृश्य

स्थान—कलिंग की युद्धभूमि

समय—रात का प्रथम प्रहर

[आकाश में शुक्ल त्रयोदशी का चांद चमक रहा है। जहां तक निगाह जाती है, युद्धभूमि में विनाश के चिह्न दिखाई देते हैं। टूटे हुए रथों की भरमार है। मरे हुए मनुष्यों तथा घोड़ों की लाशें सैकड़ों की संख्या में बिखरी पड़ी हैं। घायलों के चीत्कार से आसमान भर रहा है। सुदूर दक्षिण में अशोक की सेना के शिविर की रोशनी दिखाई दे रही है और सुदूर उत्तर में कलिंग की सेना की। युद्धक्षेत्र में आचार्य उपगुप्त तथा शीला अनेक बौद्ध-भिक्षुओं के साथ घायलों की सेवा का कार्य कर रहे हैं। सभी बौद्ध भिक्षुओं ने श्वेत वस्त्र धारण किए हुए हैं, और सभी लोग बिलकुल चुप हैं। किसी को पानी पिलाया जा रहा है, किसी की मरहम-पट्टी की जा रही है और किसी को गाड़ी पर लादकर चिकित्सालय के शिविर की ओर भेजा जा रहा है।]

[सहसा शीला काम करते-करते रुक जाती है और अनायास ही उसके मुंह से एक ठण्डी आह निकल पड़ती है।]

आचार्य उपगुप्त—क्या है बेटी!

शीला—यह भयानक जन-संहार कब समाप्त होगा पिताजी?

उप०—कुछ कहा नहीं जा सकता शीला! मानव-हृदय का अहं-

सातवां दृश्य

स्थान—कलिंग की युद्धभूमि

समय—रात का प्रथम प्रहर

[आकाश में शुक्ल त्रयोदशी का चांद चमक रहा है। जहां तक निगाह जाती है, युद्धभूमि में विनाश के चिह्न दिखाई देते हैं। टूटे हुए रथों की भरमार है। मरे हुए मनुष्यों तथा घोड़ों की लाशें सैकड़ों की संख्या में बिखरी पड़ी हैं। घायलों के चीत्कार से आसमान भर रहा है। सुदूर दक्षिण में अशोक की सेना के शिविर की रोशनी दिखाई दे रही है और सुदूर उत्तर में कलिंग की सेना की। युद्धक्षेत्र में आचार्य उपगुप्त तथा शीला अनेक बौद्ध-भिक्षुओं के साथ घायलों की सेवा का कार्य कर रहे हैं। सभी बौद्ध भिक्षुओं ने श्वेत वस्त्र धारण किए हुए हैं, और सभी लोग बिलकुल चुप हैं। किसी को पानी पिलाया जा रहा है, किसी की मरहम-पट्टी की जा रही है और किसी को गाड़ी पर लादकर चिकित्सालय के शिविर की ओर भेजा जा रहा है।]

[सहसा शीला काम करते-करते रुक जाती है और अनायास ही उसके मुंह से एक ठण्डी आह निकल पड़ती है।]

आचार्य उपगुप्त—क्या है बेटी !

शीला—यह भयानक जन-संहार कब समाप्त होगा पिताजी ?

उप०—कुछ कहा नहीं जा सकता शीला ! मानव-हृदय का अहं-

कार इस युद्ध के मूल में है। अशोक का अहंकार अब फैलकर समाज या जाति का अहंकार बन जाता है, तब उसकी जड़ें पाताल तक चली जाती हैं। दोनों पक्षों में से जब तक एक पक्ष के अहंकार का पूर्ण नाश न हो जाएगा, तब तक यह लड़ाई बन्द न होगी।

शीला—ओह, कितना भयंकर युद्ध है! रोज दोनों तरफ के हट्टे-कट्टे, खाते-पीते, तन्दुरुस्त आदमी इस मैदान में आकर जमा होते हैं और कुछ घण्टों के बाद ही यहां सैकड़ों लाशों और हजारों घायलों को छोड़कर और कुछ भी नहीं बचता! दो बरस हो गए, यह युद्ध समाप्त होने में नहीं आया। नौबत यहां तक पहुंच गई है कि दिन-भर में जितने लोग मरते हैं, उनकी लाशों की भी अब कोई परवा नहीं करता। आप इस भयंकर युद्ध को बन्द करवाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते पिताजी?

उप०—मैं कर ही क्या सकता हूं शीला?

शीला—आप सम्राट् अशोक को जाकर समझाइए। सम्भव है, वह आपकी बात सुन लें।

उप०—दो वर्षों तक इतने कष्ट झेलते रहने के बाद, और अपने पक्ष के हजारों सैनिकों की बलि दे चुकने के बाद वह कभी मेरे कहने-मात्र से अपना इरादा बदल सकता है बेटी?

शीला—मेरा खयाल है, आपकी बात इस दुनिया में कोई नहीं टाल सकता पिताजी!

उप०—(जरा कोमल भाव से) अच्छा बेटी, एक बात पूछूं तो उसका सही-सही उत्तर दोगी?

शीला—क्यों नहीं पिताजी!

उप०—अशोक के प्रति तुम्हारे हृदय में क्या अभी तक प्रतिहिंसा के भाव बाकी हैं?

शीला—(जरा लज्जित स्वर में) प्रतिहिंसा तो नहीं, इसे एक तरह

से घृणा और भय का सा भाव कहना चाहिए। मुझे भय प्रतीत होता है कि उसके प्रति मेरे हृदय में कहीं फिर से प्रतिहिंसा की भावना जाग-रित न हो जाए। इसी भय से मैं कभी उसकी याद तक नहीं करती। मैं सदा प्रयत्न करती हूं कि उसका नाम भी मेरे कानों में न पड़े। मुझे यह भी याद न रहे कि एक ऐसा व्यक्ति इस दुनिया में मौजूद है, जिसने मुझे पीड़ा पहुंचाई थी। और इसमें मुझे सफलता भी मिली है भगवन्!

उप०—तुम मानवी नहीं, देवी हो शीला!

[शीला लज्जित होकर पुनः घायलों की सेवा के कार्य में लग जाती है। सहसा कुछ ही दूर चलकर एक लाश पर उसकी दृष्टि पड़ती है। कलिंग के किसी युवक सेनानायक का यह शव है। इस युवक के चेहरे पर शीला को कोई ऐसी असाधारणता प्रतीत होती है कि वह उसे ध्यान से देखने लगती है।]

शीला—(परीक्षा करके) नहीं, कुछ भी आशा नहीं है। यह कभी का समाप्त हो चुका है। ओह कितना स्वस्थ और सुन्दर युवक था।

[सहसा उसकी निगाह उस सैनिक की जेब में उभरे हुए एक कागज पर पड़ती है। शीला वह कागज खींच लेती है।]

शीला—नायक!

एक भिक्षु—(समीप आकर) आज्ञा कीजिए माता!

शीला—इस पत्र को जरा पढ़ो तो!

भिक्षु—(पढ़ता है) "प्राणनाथ! सन्देशवाहक के हाथ यह पत्र तुम्हारी सेवा में भेज रही हूं। देखो नाथ, तुम कितने निष्ठुर हो। तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मंगलवार तक तुम यहां पहुंच जाओगे, और आज शनिवार हो जाने पर भी तुम नहीं आए। परमात्मा करे, तुम पर कष्ट की हल्की-सी छाया भी न पड़े। मेरे देवता, हमारे विवाह को अभी एक महीना भी नहीं बीता। अभी से तुम इतने निठुर हो गए! लिखो,

कब आओगे ? मैं दिन-रात द्वार पर बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा किया करती हूं। तुम कुछ बाकायदा सैनिक तो नहीं कि इच्छा रहने पर भी घर न आ सको। मेरी शपथ, एक बार अपनी सूरत मुझे दिखा जाओ। मेरा जी बहुत उद्विग्न हो रहा है।—विजया।"

शीला—ओह अभागिनी नारी ! इस पत्र पर तारीख कौन-सी है ?

भिक्षु—यह पत्र कल ही कुशाली से लिखा गया है।

शीला—यह इसके दूसरी ओर क्या लिखा है ?

भिक्षु—(देखकर पढ़ता है) "प्यारी, युद्धभूमि में कागज नहीं मिलते, इससे तुम्हारे पत्र की पीठ पर ही जवाब लिख रहा हूं। अब तक क्यों नहीं आया, यह मिलने पर ही बताऊंगा। यहां इतना संकेत ही पर्याप्त है कि हमारी मातृभूमि पर बहुत शीघ्र महासंकट आने की पूरी सम्भावना है। बोलो, क्या मुझे अनुमति न दोगी कि मैं मातृभूमि की, धाता की, देश की पुकार पर ध्यान दूं ? इस मंगलवार को, यानी परसों, अवश्य तुम्हारी सेवा में पहुंच जाऊंगा।"

शीला—इस वीर की लाश रथ पर रखो, मैं स्वयं इसे इसके घर तक पहुंचा आऊंगी।

भिक्षु—जो आज्ञा।

[रथ आता है और एक भिक्षु को साथ लेकर लाश-सहित शीला उसमें सवार हो जाती है।]

[दृश्य बदलता है]

स्थान—कुशाली की एक अट्टालिका का आंगन

समय—आधी रात

[उस युवक की लाश आंगन में पड़ी है। उसके पास ही सैनिक की प्यारी पत्नी विजया अस्त-व्यस्त वेश में

में खड़ी शीला से बातें कर रही है।]

विजया—ये तुम्हें कहां मिले मां ?

शीला—कलिंग के युद्धक्षेत्र में।

विजया—इनमें सचमुच जीवन बाकी नहीं है क्या ?

शीला—सब समाप्त हो गया बहन !

विजया—नहीं, नहीं ! वह देखो किस तरह मेरी ओर देख रहे हैं !

शीला—धैर्य धारण करो अभागिनी नारी !

विजया—नहीं, मुझे छोड़कर कभी नहीं जा सकते। उन्होंने मुझसे वायदा किया था कि वे शीघ्र ही यहां आएंगे।

शीला—विजया, वे ऐसी जगह चले गए हैं, जहां से लौटकर कोई नहीं आता।

विजया—मेरे हाथों को देखती हो ! अभी विवाह की मेंहदी भी नहीं उतरी। नहीं, नहीं, वे जीवित हैं, वे मुझे छोड़कर नहीं जा सकते ! कभी नहीं जा सकते !

शीला—व्यर्थ का मोह मत करो बहन ! मुझे मालूम है, भाग्य ने तुम्हें कितनी गहरी चोट पहुंचाई है। मगर धैर्य रखो, सहन करो। और किया भी क्या जा सकता है !

विजया—हे प्रभो !···जो कुछ मैं देख रही हूं, वह आधी रात का झूठा सपना नहीं है क्या ?

शीला—बहन, आज सम्पूर्ण मगध-साम्राज्य और सम्पूर्ण कलिंग इसी दुःख से दुःखी है। घर-घर में मातम छाया हुआ है। तुम धैर्य धारण करो। तुम्हारे स्वामी वीर पुरुष थे। उन्होंने अपने कर्तव्य के सम्मुख जीवन की परवाह नहीं की !

विजया—उफ !···परमात्मा, मेरी आंखों के सम्मुख अंधेरा छाया

कब आओगे ? मैं दिन-रात द्वार पर बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा किया करती हूं। तुम कुछ बालापरा सैनिक तो नहीं कि इच्छा रहने पर भी घर न आ सको। मेरी शपथ, एक बार अपनी सूरत मुझे दिखा जाओ। मेरा जी बहुत उद्विग्न हो रहा है। —विजया।"

शीला—ओह अभागिनी नारी ! इस पत्र पर तारीख कौन-सी है ?

भिक्षु—यह पत्र कल ही तुषाली से लिखा गया है।

शीला—यह इसके दूसरी ओर क्या लिखा है ?

भिक्षु—(देखकर पढ़ता है) "प्यारी, युद्धभूमि में कागज नहीं मिलते, इससे तुम्हारे पत्र की पीठ पर ही जवाब लिख रहा हूं। अब तक क्यों नहीं आया, यह मिलने पर ही बताऊंगा। यहां इतना संकेत ही पर्याप्त है कि हमारी मातृभूमि पर बहुत शीघ्र महासंकट आने की पूरी सम्भावना है। बोलो, क्या मुझे अनुमति न दोगी कि मैं मातृभूमि की, माता की, देश की पुकार पर ध्यान दूं ? इस मंगलवार को, यानी परसों, अवश्य तुम्हारी सेवा में पहुंच जाऊंगा।"

शीला—इस वीर की लाश रथ पर रखो, मैं स्वयं इसे इसके घर तक पहुंचा आऊंगी।

भिक्षु—जो आज्ञा।

[रथ आता है और एक भिक्षु को साथ लेकर लाश-सहित शीला उसमें सवार हो जाती है।]

[दृश्य बदलता है]

स्थान—तुषाली की एक अट्टालिका का आंगन

समय—आधी रात

[उस युवक की लाश आंगन में पड़ी है। उसके पास ही सैनिक की पत्नी युवती विजया अस्त-व्यस्त वेश में आंगन

मे खड़ी शीला से बातें कर रही है।]

विजया—ये तुम्हें कहां मिले मां ?

शीला—कलिंग के युद्धक्षेत्र में।

विजया—इनमें सचमुच जीवन बाकी नहीं है क्या ?

शीला—सब समाप्त हो गया बहन !

विजया—नहीं, नहीं ! वह देखो किस तरह मेरी ओर देख रहे हैं !

शीला—धैर्य धारण करो अभागिनी नारी !

विजया—नहीं, मुझे छोड़कर कभी नहीं जा सकते। उन्होंने मुझसे वायदा किया था कि वे शीघ्र ही यहां आएंगे।

शीला—विजया, वे ऐसी जगह चले गए हैं, जहां से लौटकर कोई नहीं आता।

विजया—मेरे हाथों को देखती हो ! अभी विवाह की मेंहदी भी नहीं उतरी। नहीं, नहीं, वे जीवित हैं, वे मुझे छोड़कर नहीं जा सकते ! कभी नहीं जा सकते !

शीला—व्यर्थ का मोह मत करो बहन ! मुझे मालूम है, भाग्य ने तुम्हें कितनी गहरी चोट पहुंचाई है। मगर धैर्य रखो, सहन करो। और किया भी क्या जा सकता है !

विजया—हे प्रभो !···जो कुछ मैं देख रही हूं, वह आधी रात का झूठा सपना नहीं है क्या ?

शीला—बहन, आज सम्पूर्ण मगध-साम्राज्य और सम्पूर्ण कलिंग इसी दुःख से दुःखी है। घर-घर में मातम छाया हुआ है। तुम धैर्य धारण करो। तुम्हारे स्वामी वीर पुरुष थे। उन्होंने अपने कर्तव्य के सम्मुख जीवन की परवाह नहीं की !

विजया—उफ !···परमात्मा, मेरी आंखों के सम्मुख अंधेरा छाया

चला जा रहा है। यह कैसी आँधी आया है! आर्य! प्राणनाथ तुम कहाँ हो?

शीला—(युवती के कन्धे पर हाथ रखकर) धीरज धरो बहन!

विजया—(पागलों के भाव से) हाँ, मैं समझी। इन्हें वह राक्षस अशोक खा गया है। खूनी! हत्यारा! दैत्य! वह सारी दुनिया को खा जाएगा। वह इस सम्पूर्ण विश्व को खा जाएगा। राक्षस! पिशाच!!

[शीला सहसा अनुभव करती है कि उसके हृदय का पुराना शोक फिर उमड़ पड़ना चाहता है। वह विजया को उसके सम्बन्धियों की देख-रेख में छोड़कर स्वयं वहाँ से चली जाती है।]

पटाक्षेप

पांचवां अंक

पहला दृश्य

स्थान—युद्धभूमि में अशोक का खेमा

समय—प्रभात

[सम्राट् अशोक अपने खेमे के बाहर धीरे-धीरे टहल रहे हैं। दूर पर सैनिक बाजा बज रहा है।]

अशोक—आखिर चण्डगिरि भी मारा गया। एक जमाने से वह मेरा दाहिना हाथ बनकर रहा है। मगर उसके मर जाने पर भी मुझे रंज क्यों नहीं हो रहा है? ऐसा अनुभव होता है, जैसे किसी दानव के पंजों से मुझे छुटकारा मिल गया हो। कितना प्रचण्ड शक्तिशाली था वह! उसने मेरी स्पष्ट आज्ञा के प्रतिकूल मेरे भाई की हत्या कर दी, फिर भी मैं उससे कुछ भी कह-सुन नहीं सका। झूठ, छल, हत्या—ये सब चीजें उसके लिए नितान्त साधारण बातें थीं। मगर मेरे प्रति वह सदा ईमानदार रहा। उसने जो कुछ किया, मेरे लिए ही किया और बिल्कुल निष्काम भाव से किया। तक्षशिला नगर की प्रजा के क्रोध से मैंने उसकी रक्षा की थी, उसका बदला उसने अपने प्राणों को होम कर चुका दिया। ···मगर वह मेरे भाई का हत्यारा था! ···जाने दो, वो चला गया, उसकी याद करने का स्थान कम से कम समरभूमि हरगिज नहीं है।

[नये सेनापति मोसरो का प्रवेश]

मौखरी—(सैनिक ढंग से नमस्कार करके) सम्राट् की जय हो!

अशोक—क्या समाचार है सेनापति?

मौखरी—दक्षिण की ओर से कलिंगराज ने अपनी सेना वापस बुला ली है। आज उस ओर युद्ध नहीं होगा।

अशोक—यह शुभ समाचार है सेनापति। इसका कारण तुमने सोचा?

मौखरी—जी हां, मेरा विचार है कि कलिंगराज आज अपनी सम्पूर्ण सम्मिलित शक्ति से उत्तर की ओर से आक्रमण करेंगे।

अशोक—मेरा यह खयाल नहीं। मुझे विश्वास है कि इसमें कलिंगराज की कोई गहरी चाल है, खैर, देखा जाएगा। कोई और बात?

मौखरी—सम्राट् कलिंग की सेना का बहुत बुरा हाल है; परन्तु हमारी सेना भी आजकल कम कष्ट में नहीं है।

अशोक—क्यों, हमारी सेना को क्या कष्ट है?

मौखरी—भोजन और वस्त्र दोनों की कमी हो गई है।

अशोक—चण्डगिरि इस कमी का क्या इलाज किया करता था?

मौखरी—वे तुशाली के आसपास के गांवों को जबरदस्ती लूटकर अपना काम चलाते थे।

अशोक—तुम भी वही करो।

मौखरी—मगर इस समय युद्धभूमि के चारों ओर के तीन कोसों में, केवल तुशाली को छोड़कर, एक भी नगर या गांव बाकी नहीं बचा। सब के सब उजड़ गए हैं सम्राट्!

अशोक—अपने सैनिकों को तीस कोस से और आगे बढ़ जाने का आदेश दो सेनापति!

मौखरी—उन गांवों में भी स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों को छोड़कर कोई नहीं बचा महाराज!

अशोक—हम यह सब कुछ नहीं जानते ! कहीं से प्रबन्ध करो। यह प्रबन्ध तो करना ही होगा। इस मामूली-सी दया माया के पीछे मैं इतने दिनों की मेहनत बरबाद नहीं कर सकता। देखो, तुम्हें मालूम है न, कि पूरे दो वर्षों तक चण्डगिरि ने इस युद्ध का सेनापतित्व निबाहा, परन्तु उसने एक बार भी इस तरह की कोई शिकायत मुझसे नहीं की।

मौखरी—परिस्थितियां क्रमशः अधिक-अधिक विकट होती जा रही हैं महाराज !

अशोक—हम यह सब कुछ नहीं सुनेंगे ! परिस्थितियां विकट हों रही हैं, तो कलिंगराज की शक्ति भी अब तक बहुत क्षीण हो चुकी है। जाओ, चाहे जहां से और जैसे हो सके, अन्न और वस्त्र का इन्तज़ाम करो। यह तो करना ही होगा। मेरी सेना को अन्न की कमी नहीं होनी चाहिए।

मौखरी—जो आज्ञा सम्राट् ! (प्रणाम करके प्रस्थान)

अशोक—मैं संसार-भर में 'अत्याचारी अशोक' के नाम से प्रसिद्ध। माताएं अपने बच्चों को मेरा नाम लेकर डराती हैं। मेरी गणना काल, महामारी और मौत के साथ की जाती है। सुबह उठकर कोई रा नाम लेना भी पसन्द नहीं करता। फिर क्यों न मैं भी अत्याचार ी पराकाष्ठा करके ही दिखा दूं ! मेरे उद्धार की एक ही आशा थी, रे लिए प्रकाश की एक ही किरण थी। वह थी मेरी भाभी शीला ! '' मगर वह भी तो अपने हृदय में मेरे प्रति अनन्त रोष का भाव कर कहीं चली गई ! नहीं मैं अपने हृदय पर नियन्त्रण रखूंगा। मैं सकी पुण्यस्मृति को भी भुला दूंगा। उसकी निगाहों में भी तो मैं एक हामयंकर पिशाच हूं !···मानव-जाति ! कलेजा थामकर देख ! शोक आज मगध साम्राज्य का स्वच्छन्द अधीश्वर है ! वह ऐसे-ऐसे ाम करके दिखाएगा कि आने वाली पीढ़ियां भी उनके नाम से थर्राया

मौखरी—(सैनिक ढंग से नमस्कार करके) सम्राट् की जय हो!

अशोक—क्या समाचार है सेनापति ?

मौखरी—दक्षिण की ओर से कलिंगराज ने अपनी सेना वाप
बुला ली है। आज उस ओर युद्ध नहीं होगा।

अशोक—यह शुभ समाचार है सेनापति। इसका कारण तुम
सोचा ?

मौखरी—जी हां, मेरा विचार है कि कलिंगराज आज अप
सम्पूर्ण सम्मिलित शक्ति से उत्तर की ओर से आक्रमण करेंगे।

अशोक—मेरा यह खयाल नहीं। मुझे विश्वास है कि इसमें कलिंग
राज की कोई गहरी चाल है, खैर, देखा जाएगा। कोई और बात ?

मौखरी—सम्राट् कलिंग की सेना का बहुत बुरा हाल है; परन्
हमारी सेना भी आजकल कम कष्ट में नहीं है।

अशोक—क्यों, हमारी सेना को क्या कष्ट है ?

मौखरी—भोजन और वस्त्र दोनों की कमी हो गई है।

अशोक—चण्डगिरि इस कमी का क्या इलाज किया करता था ?

मौखरी—वे तुशाली के आसपास के गांवों को जबरदस्ती लूटकर
अपना काम चलाते थे।

अशोक—तुम भी यही करो।

मौखरी—मगर इस समय युद्धभूमि के चारों ओर के तीस कोसों
में, केवल तुशाली को छोड़कर, एक भी नगर या गांव बाकी
सब के सब उजड़ गए हैं सम्राट् !

अशोक—अपने सैनिकों को तीस
आदेश दो सेनापति !

मौखरी—उन गांवों में भी ..
कोई नहीं बचा महाराज !

अशोक—हम यह सब कुछ नहीं जानते ! कहीं से प्रबन्ध करो। यह प्रबन्ध तो करना ही होगा। इस मामूली-सी दया माया के पीछे मैं इतने दिनों की मेहनत बरबाद नहीं कर सकता। देखो, तुम्हें मालूम है न, कि पूरे दो वर्षों तक चण्डगिरि ने इस युद्ध का सेनापतित्व निबाहा, परन्तु उसने एक बार भी इस तरह की कोई शिकायत मुझसे नहीं की।

मौखरी—परिस्थितियां क्रमशः अधिक-अधिक विकट होती जा रही हैं महाराज !

अशोक—हम यह सब कुछ नहीं सुनेंगे ! परिस्थितियां विकट हो रही हैं, तो कलिंगराज की शक्ति भी अब तक बहुत क्षीण हो चुकी है। जाओ, चाहे जहां से और जैसे हो सके, अन्न और वस्त्र का इन्तज़ाम करो। यह तो करना ही होगा। मेरी सेना को अन्न की कमी नहीं होनी चाहिए।

मौखरी—जो आज्ञा सम्राट् ! (प्रणाम करके प्रस्थान)

अशोक—मैं संसार-भर में 'अत्याचारी अशोक' के नाम से प्रसिद्ध हूं। माताएं अपने बच्चों को मेरा नाम लेकर डराती हैं। मेरी गणना अकाल, महामारी और मौत के साथ की जाती है। सुबह उठकर कोई मेरा नाम लेना भी पसन्द नहीं करता। फिर क्यों न मैं भी अत्याचार की पराकाष्ठा करके ही दिखा दूं ! मेरे उद्धार की एक ही आशा थी, मेरे लिए प्रकाश की एक ही किरण थी। वह थी मेरी भाभी शीला ! ··· मगर वह भी तो अपने हृदय में मेरे प्रति अनन्त रोष का भाव लेकर कहीं चली गई ! नहीं मैं अपने हृदय पर नियन्त्रण रखूंगा। मैं उसकी पुण्यस्मृति को भी भूला दूंगा। उसकी निगाहों में भी तो मैं एक महाभयंकर पिशाच हूं ! ···मानव-जाति ! सन्नाटा थामकर देख ! अशोक आज मगध साम्राज्य का स्वच्छन्द अधीश्वर है ! वह ऐसे-ऐसे काम करके दिखाएगा कि आने वाली पीढ़ियां भी उसके नाम से थर्रायां

करेंगी ! (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—कलिंग राज्य के एक गांव के निकट के खेतों की सूखी धरती ।

समय—दोपहर

[*अशोक के सैनिक निकट के गांव को लूट रहे हैं । सब ओर हाहाकार मचा हुआ है एक मुहल्ले में सैनिकों ने आग लगा दी है, उस की लपटें और गहरा धुंआ दूर तक दिखलाई पड़ रहा है । स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े गांव छोड़कर भागे जा रहे हैं । इन भाग रहे व्यक्तियों में कहीं कोई नवयुवक दिखाई नहीं देता ।*]

एक बालक—(अपनी मां से) मैं बिलकुल थक गया हूं ! अब और नहीं दौड़ा जाता मां !

स्त्री—इस गांव को अशोक लग गया है बेटा ! दौड़ो, जान की बाजी लगाकर दौड़ो ! वह देखो, अशोक गांव को आग लगा रहा है ! तुम तो बड़े बहादुर हो, मेरे राजा बेटा ! शाबाश, दौड़े चलो !

बालक—ओह, कितनी गरमी है ! पानी ! पानी !!

स्त्री—बेटा, थोड़ी-सी हिम्मत और करो । नदी तक पहुंच जाएं तो वहां भर-पेट पानी मिल जाएगा ।

[बालक रोते हुए फिर से दौड़ने लगता है ।]

[*दक्षिण की ओर से पांच-छः स्त्रियां और दस-ग्यारह बच्चे भागकर उसी जगह आते हैं*]

एक युवती—(एक वृद्धा से) अब मैं और नहीं दौड़ सकती मां ! मेरा जी डूब-सा रहा है । (बैठ जाती है)

वृद्धा—प्रभो, तुम कहां हो ! मेरा जवान बेटा युद्ध में मारा गया ।

उसकी पत्नी गर्भवती है और आज दोपहर की इस तेज गरमी में घर-बार छोड़कर इस तरह भागना पड़ रहा है। प्रभो, तुम्हारा चक्र आज कहाँ सो रहा है, जिससे तुम दुष्टों का अत्याचारियों नाश किया करते थे! (युवती से) बेटी हिम्मत न हारो। थोड़ी यहां आराम कर लो।

युवती—(आंखों में आंसू भरकर ऊपर की ओर ताकते हुए) तू मुझे अपनी गोद में वापस क्यों नहीं बुला लेती! ओह, यह कि असीम यातना है!

बूढ़ा—धैर्य धारण करो (अपनी पुत्री से) तुम अपनी भाभी सहारा देकर चलाओ!

कन्या—बहुत अच्छा माताजी!

[वह युवती उठ खड़ी होती है और अपनी ननद के सहारे लड़खड़ हुई चलने लगती है। सब लोग आगे बढ़ने ही लगते हैं कि उसी समय दूसरी ओर से तीन-चार सिपाहियों की एक टोली आकर उनका मार्ग रोक लेती है।]

एक सैनिक—ठहरो!

[सब स्त्रियां भयभीत होकर रुक जाती हैं। किसी-किसी की भय के कारण चीख निकल जाती है।]

दूसरा सैनिक—तुम्हारे पास जो कुछ है; वह हमें दे दो!

एक स्त्री—हमारे पास कुछ भी नहीं है।

बूढ़ा—(क्रोध से) तुम लोग सैनिक हो या लुटेरे!

एक सैनिक—चुपचाप खड़े रहो। बकवास करोगे तो तुम्हा खबर ली जाएगी!

दूसरा सैनिक—(युवती के आभूषणों की ओर देखकर) तुमने आभूषण कैसे पहन रखे हैं? इन्हें उतारकर हमें दे दो।

वृद्धा—(हाथ जोड़कर) यह मेरी पुत्रवधू है महाराज ! यह गर्भवती है; इसे तंग न कीजिए। इसके बदले चाहे मुझे जान से ही मार डालिए।

एक सैनिक—अब गिड़गिड़ाने लगी न ! पहले किस तरह भेरली बनी जा रही थी ! (युवती से) उतारो अपने सब आभूषण !

[युवती भय से कांपने लगती है। उससे खड़ा नहीं रहा जाता। लाचार होकर वह उस तपी हुई बालू पर बैठ जाती है। इसी समय एक वृद्ध का प्रवेश]

वृद्ध—यह क्या हो रहा है ?(परिस्थिति समझकर, सैनिकों से) तुम लोग मनुष्य हो या पिशाच !

पहला सैनिक—बकोगे तो यह डण्डा तुम्हारी भी खबर लेगा ?

वृद्ध—डराता किसे है नालायक ! स्त्रियों और बूढ़ों पर अपना रोब जमाने आया है कायर। खबरदार ! जो तुमने किसी स्त्री पर हाथ उठाया। कहे देता हूं। मैं मरूंगा भी, तो तुममें से एक न एक को जरूर साथ लेकर मरूंगा।

तीसरा सैनिक—(अपने साथियों से) सेनापति मौखरी की आज्ञा है कि जहां तक हो सके बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों पर अत्याचार मत करो।

पहला सैनिक—अब तुम भी धरम बघारने लगे !

वृद्ध—शाबाश सैनिक, देखता हूं, तुम्हारे भी हृदय है।

[इसी समय दोनों सैनिक उस बूढ़े पर आक्रमण कर देते हैं। वह पैंतरे बदल-बदलकर अपना बचाव करने लगता है। सहसा विजया का प्रवेश। उसके हाथों में एक तेज छुरा है।]

विजया—(निकट आकर) यह क्या हो रहा है ?

वृद्धा—(रोते हुए) इस बूढ़े की सहायता करो बेटी ! ये दोनों

पिशाच हम स्त्रियों पर अत्याचार कर रहे थे, इन्होंने रोका तो इन्हीं पर पिल पड़े।

विजया—(रोष के साथ) ठहरो!

[दूसरा सिपाही आश्चर्य से विजया को ओर देखने लगता है। इसी समय वृद्ध महाशय एक लाठी कसकर पहले सैनिक के सिर पर जमाते हैं। उसे काफी चोट पहुंचती है। वह गिर पड़ता है दूसरा सैनिक तत्काल वृद्ध पर आक्रमण कर देता है। तब विजया दूसरे सैनिक की पीठ में छुरा घोंप देती है।]

दूसरा सैनिक—हाय! (गिरकर मर जाता है)

[सब स्त्रियां भाग जाती हैं। तीसरा सिपाही अब भी उसी तरह चुपचाप खड़ा रहता है]

तीसरा सैनिक—(विजया से) अभी थोड़ी देर में यहां और सैनिक आ जाएंगे। तुम यह छुरा यहीं छोड़कर कहीं भाग जाओ।

विजया—नहीं, मैं अपने प्राण बचाने नहीं आई, अपने प्राण देने आई हूं। देखती हूं, तुममें हृदय है। तुम अपने सेनापति को ऐसे अत्याचार करने से रोकते क्यों नहीं?

तीसरा सैनिक—सेनापति इस तरह के अत्याचार पसन्द नहीं करते। यह इनकी अपनी दीवानियत है। सीमाप्रान्त के ये सैनिक बड़े निर्दय हैं।

[इसी समय दूर पर कुछ और सैनिक दिखाई देते हैं]

सैनिक—अब भी मौका है। तुम यह छुरा फेंककर भाग जाओ बहन!

विजया—नहीं सैनिक, मैं आज यहां दीन-दुखियों की सेवा में अपने प्राण देने आई हूं; मुझे जीने की इच्छा बिलकुल नहीं है।

[तीन सैनिक वहां और आ पहुंचते हैं। विजया उन पर आक्रमण

वृद्धा—(हाथ जोड़कर) यह मेरी पुत्रवधू है महाराज! यह गर्भवती है; इसे तंग न कीजिए। इसके बदले चाहे मुझे जान से ही मार डालिए।

एक सैनिक—अब गिड़गिड़ाने लगी न! पहले किस तरह ऐंठती बनी जा रही थी! (युवती से) उतारो अपने सब आभूषण!

[युवती भय से कांपने लगती है। उससे खड़ा नहीं रहा
जाता। लाचार होकर वह उस तपी हुई बालू पर
बैठ जाती है। इसी समय एक वृद्ध का प्रवेश]

वृद्ध—यह क्या हो रहा है? (परिस्थिति समझकर, सैनिकों से) तुम लोग मनुष्य हो या पिशाच!

पहला सैनिक—बकोगे तो यह डण्डा तुम्हारी भी खबर लेगा?

वृद्ध—डराता किसे है नालायक! स्त्रियों और बूढ़
रोब जमाने आया है कायर। खबरदार! जो
स्त्री पर हाथ उठाया। कहे देता हूं। मैं मरूंगा भी, तो द
न एक को जरूर साथ लेकर मरूंगा।

तीसरा सैनिक—(अपने साथियों से) सेनापति मौल
है कि जहां तक हो सके बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों पर
करो।

पहला सैनिक—अब तुम भी भरम ब

वृद्ध—शाबाश सैनिक, देखता हूं, तुम

[इसी समय दोनों सैनिक उस बूढ़े पर अ
पैतरे बदल-बदलकर अपना बचाव क
विजया का प्रवेश। उसके हाथों में ए

विजया—(निकट आकर)

वृद्धा—(रोने

बची-खुची सेना का संग्रह करके सम्राट् के शिविर पर भयंकर आक्रमण कर देंगे।

शीला—और यदि यह षड्यन्त्र असफल हो जाए तो ?

चर—कलिंगराज को अपने इस षड्यन्त्र की सफलता का पूरा भरोसा है, फिर भी उन्होंने निश्चय कर लिया है कि यदि इस चाल में उन्हें सफलता न हुई तो वे कल ही अशोक की अधीनता स्वीकार कर लेंगे।

शीला—इस समय कितने बजे होंगे ?

चर—दिन का चौथा पहर समाप्ति पर है, राजकुमारी।

शीला—अच्छा जाओ।

[चर का प्रस्थान]

शीला—(उद्विग्न भाव से धीरे-धीरे टहलना शुरू कर देती है) यह कैसी अनुभूति होती है ! अब दो ही प्रहर के भीतर अशोक का वध कर दिया जाएगा। यह शुभ समाचार है या अशुभ ? मेरा हृदय सहसा इतना उद्विग्न क्यों हो उठा है ! परन्तु मुझे क्या ! कलिंगराज के इस षड्यन्त्र में बाधा उपस्थित करना मेरा कार्य नहीं है।................ क्या सचमुच अशोक का वध हो जाने दूं ?..... नहीं, कुछ समझ में नहीं आता ! मैं चाहूं तो उसका जीवन बचा सकती।........मगर वह युवराज का हत्यारा है ! उसने मेरा सर्वनाश कर दिया ! उसने इस हरे-भरे कलिंग को एक विशाल श्मशान के रूप में परिणत कर दिया है ! उसकी जैसी किस्मत हो, भुगते। मैंने जब उसके अत्याचारों के मार्ग में बाधा नहीं पहुंचाई, तब उसके विरोधियों के मार्ग में कैसे बाधा पहुंचाऊं !......तो क्या सचमुच अशोक को मर जाने दूं ?......कुछ ही घण्टों बाद अशोक संसार में नहीं रहेगा। यह कैसी अनुभूति है ! मुझे खुशी हो रही है, रंज हो रहा है या चिन्ता हो रही है—कुछ भी समझ नहीं आता ! नहीं, मैं यह सब भुला दूंगी। मुझे इस

युद्ध की घटनाओं से कोई वास्ता नहीं। और मैं कर भी क्या सक
हूं। अशोक को सूचना दे दूं तो वह क्रोध में आकर कत्लेआम कर
देगा। इतनी भीषण नरहत्या का उत्तरदायित्व मैं अपने पर कैसे
सकती हूं! ....मगर क्या सचमुच मैं कुछ नहीं कर सकती? (
सोचने लगती है; इसके बाद सहसा उसके चेहरे पर एक विशेष प्रका
का दैवी उल्लास-सा दिखाई देने लगता है और वह खुशी से नाच उठ
है) आहा, मुझे अपना कर्तव्य सूझ गया! ठीक है, ठीक है! मु
अपनी राह दिखाई दे गई! मेरी साधना आज समाप्त हो जाएगी
अशोक, मेरे देवर, मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया! मैंने तुम्हें हृदय से क्षम
कर दिया! आज मैं अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊंगी और तु
मृत्यु के मुंह से बचा लूंगी। मैंने पिछला सभी कुछ भुला दिया। आहा
यह कितना स्वर्गीय उल्लास है!

[उपगुप्त का प्रवेश]

शीला—(प्रसन्नता से लगभग उन्मत्त-सी दशा में) आहा, पिताजी,
आप आ गए! मैं स्वयं आपके पास आने ही वाली थी।

उप०—तुम आज इतनी खुश क्यों दिखाई दे रही हो शीला?

शीला—पिताजी, मेरा हृदय आज इतना प्रसन्न है, जितना य
बरसों से नहीं हुआ था!

उप०—यह तो मैं देख ही रहा हूं बेटी! तुम्हारे चेहरे पर आज
स्वर्गीय आभा दिखाई दे रही है। तुम इतनी प्रसन्न क्यों हो शीला?

शीला—आपने कलिंगराज के षड्यन्त्र का समाचार तो सुन लिया
है न पिताजी!

उप०—(जरा संकोच के साथ) ओहो, तो क्या यही समाचार सुन
कर तुम प्रसन्न हो रही हो?

शीला—जी हां, आज मेरी सम्पूर्ण साधना पूरी हो जाएगी!

आहा, यह कितनी बड़ी प्रसन्नता है !

उप०—मैं तुम्हारी बात नही समझा बेटी !

शीला—मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं आज अशोक की जगह
रे प्राण देने जाऊंगी आचार्य !

उप०—(कांपकर) यह क्यों बेटी ? अशोक का जीवन बचाने का
और कोई उपाय नही है ?

शीला—मुझे तो और कोई उपाय नही सूझा । और फिर मैं अपने
त्न से इतना मोह किसलिए करूं ?

उप०—तुम जो कुछ करना चाहोगी, मैं उससे तुम्हें रोकूंगा नही
! प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का मार्ग स्वयं बनाता है । परन्तु मैं
ा अवश्य कहूंगा कि संसार को अभी तुम्हारी आवश्यकता बहुत
क है । तुम्हारे बिना यह संसार और भी अधिक अभागा, और भी
क दुःखी, और भी अधिक सूना बन जाएगा बेटी ! (स्वर कांपने
ता है)

शीला—यह क्या, आप भी इतना उद्विग्न हो उठे पिताजी !

उप०—नही बेटी, मैं सब कुछ सहन कर लूंगा । ओह, मेरा मस्तक
र गर्व से ऊंचा हुआ जा रहा है ! तुम कितनी महान हो शीला !
र मैं तुम्हारी तुलना में कितना तुच्छ हूं !

शीला – आप मुझे लज्जित करते हैं आचार्य !

उप०—मेरे जी में सैकड़ों बार यह बात आई है बेटी । फिर भी
सदा प्रयत्न किया है कि तुम्हारे सम्मुख तुम्हारी प्रशंसा न करूं ।
र आज नही रहा जाता बेटी । ओह शीला ! तुम कितनी महान हो !
देश तुम्हारे जैसी देवी को जन्म दे सकता है, वह धन्य है ! मैं
तना सौभाग्यशाली हूं कि तुम मेरे सम्पर्क में आई ।

शीला—मैं जो कुछ हूं, आपकी बनाई हुई हूं । (धीरे से) अब

बहुत थोड़ा समय बाकी है पिताजी। आपसे मैं केवल एक बात में सहायता चाहती हूं।

उप०—कहो।

शीला—किसी तरह आप इस बात का प्रबन्ध कर दीजिए कि सम्राट् अशोक आज आधी रात तक अपने खेमे से बाहर रहें और यह बात किसी को मालूम न होने पाए।

उप०—(कुछ देर सोचकर) अच्छा, मैं इस बात का प्रबन्ध कर लूंगा। परन्तु मुझे एक बात और सूझी है; क्यों न सम्राट् को हम लोग आधी रात तक वहां से दूर रखें और तुम भी वहां मत जाओ। षड्यन्त्रकारी अन्धकार में ही उनकी शैया पर वार करेंगे; उन्हें कहां मालूम पड़ेगा कि उनके वार का परिणाम क्या हुआ है?

शीला—नहीं पिताजी, वे इतने मूर्ख न होंगे कि यह समझ न जाएं कि उनका वार खाली बिस्तरे पर पड़ा है या किसी व्यक्ति की देह पर। फिर, उसका परिणाम भी कितना भयंकर होगा! अशोक को इस षड्यन्त्र का जरा भी सन्देह हो गया, तो वह सम्पूर्ण कलिंग में एक भी व्यक्ति को जीता नहीं छोड़ेगा। पिताजी, मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप मुझे अपने निश्चय से विचलित न कीजिए।

उप०—जी नहीं मानता बेटी! मगर नहीं, मैं सब सहन करूंगा। ओह, यह कैसी अनुभूति है!

शीला—आप क्या प्रबन्ध करेंगे?

उप०—अपने विश्वस्त चर के हाथ अभी मैं अशोक के नाम इस आशय की एक चिट्ठी भेजता हूं कि यदि वह कल ही कलिंग-युद्ध को समाप्त हो गया देखना चाहता है, तो गुप्त रूप से चर के साथ इसी समय मेरे पास आ जाए। सम्राट् के यहां आने के समाचार को पूरी तरह गुप्त रखने के लिए मैं इन्हें कहला दूंगा कि चर के साथ एक व्यक्ति

मैं और भेज रहा हूं। उस व्यक्ति से कपड़े बदल कर वे छद्मवेश में यहां आ जाएं। उनके शरीर रक्षकों को भी यह ज्ञात न होने पाए कि सम्राट् कहीं बाहर गए हैं। तुम पुरुष वेश में चर के साथ चली जाओ और वहां ऐसा प्रबन्ध कर लेना कि सम्राट् के दिल में किसी तरह का सन्देह पैदा किए बिना तुम उनसे अपने पुरुषोचित वस्त्र बदल सको। मुझे मालूम है कि मेरे बौद्ध होने पर भी सम्राट् को मेरी सचाई पर और मुझ पर पूर्ण विश्वास है। वे अवश्य मेरी बात मान लेंगे।

शीला—बहुत ठीक। मुझे अब आशीर्वाद दीजिए पिताजी!

(उपगुप्त के सामने घुटने टेककर बैठ जाती है)

उप०—(आंखों में आंसू भरकर) बेटी, मैं तुम्हें क्या आशीर्वाद दूंगा! तुम्हीं इस संसार को, इस अभागी मानव जाति को यह आशीर्वाद दो कि वह इन व्यर्थ के लड़ाई-झगड़ों से अपने को और भी अधिक दुःखी न बनाए।

[उपगुप्त एक हाथ से अपने आंसू पोंछते हैं और दूसरा हाथ वे शीला के झुके हुए मस्तक पर रख देते हैं।]

चौथा दृश्य

स्थान—आचार्य उपगुप्त के तम्बू के भीतर

समय—आधी रात।

अशोक—अब तो रात का दूसरा पहर भी बीत गया आचार्य! आप अभी तक वह बात मुझे बताते क्यों नहीं?

उपगुप्त—थोड़ी देर धैर्य रखो अशोक! मैं तुम्हारे कल्याण के लिए ही इतना विलम्ब कर रहा हूं। जरा और ठहरो।

अशोक—कुछ समझ में नहीं आता! आपके पास ऐसी भी क्या बात हो सकती है, जिसके लिए किसी विशेष शुभ या अशुभ मुहूर्त की

आवश्यकता हो। फिर आप तो दूसरों का यह पचड़ा जानते भी नहीं हैं आचार्य।

उप०—आज आधी रात से एक घड़ी ऊपर तक तुम मेरे अतिथि हो अशोक! इतना समय तुम पुरस्सर यहाँ काट सको तो इसमें तुम्हारी ही भला है। खास तौर से जब इसी वातावरण के बदले कल प्रातःकाल तुम्हारी दो बरसों की मेहनत सफल हो जाएगी। तुम्हें नहीं मालूम कि इस मतवाली रात के एक-एक क्षण में हम लोग तुम्हारे लिए कितना बड़ा बलिदान कर रहे हैं।

अशोक—कुछ समझ में नहीं आता!

[कुछ क्षणों तक दोनों चुप बैठे रहते हैं। उसके बाद···]

अशोक—मेरी एक बात का जवाब देंगे भगवन्!

उप०—पूछो।

अशोक—पाटलिपुत्र को छोड़कर, राजकुमारी शीला ने आप ही के यहाँ तो आश्रय लिया था?

उप०—ठीक है।

अशोक—वे आजकल कहाँ हैं?

उप०—उनसे मिलना चाहते हो?

अशोक—क्या यह भी सम्भव है? सच तो यह है कि उन्हें देखने की उत्सुकता, उनसे क्षमा याचना करने की इच्छा मेरे उद्विग्न हृदय की सबसे बड़ी लालसा है। अशोक इस दुनिया में यदि किसी व्यक्ति से आँखें मिलाने से घबराता है, तो अपनी इसी भाभी से। संसार-भर में अशोक जिस एक व्यक्ति को सबसे अधिक इज्जत करता है, वह उसकी ये भाभी ही हैं।

उप०—इसी समय अपनी भाभी से मिलना चाहते हो?

अशोक—(ज़रा घबराए हुए स्वर में) यह भी कभी सम्भव है

आचार्य !

उप०—वह इस समय तुम्हारे निजी तम्बू में है।

अशोक—आप तो दिल्लगी करते हैं आचार्य !

उप०—मैं दिल्लगी नहीं करता अशोक ! अपने सम्पूर्ण जीवन में आज की इस भयानक रात से बढ़कर अघोर और गम्भीर मैं और कभी नहीं हुआ।

अशोक—आपकी कोई बात समझ नहीं आती भगवन् ! कृपा करके मुझे पहेलियां न बुझाइए।

उप०—सुनो अशोक, अब तुमसे कहने का समय आ गया है। सुनो, आज कुछ लोगों ने तुम्हारी हत्या का भयंकर षड्यन्त्र रचा था। षड्यन्त्र-कारियों के सम्बन्ध में मैं तुम्हें कुछ भी नहीं बताऊंगा। बस, इतना ही समझ लो कि उस षड्यंत्र की सफलता में कोई सन्देह नहीं था। हां, यह तुम्हें ज्ञात है या नहीं कि शीला यहीं थी और वह हमारे सम्पूर्ण स्वयंसेवकों की प्रधान संचालिका थी।

अशोक—(चकित होकर) वे आपके साथ युद्ध भूमि में थीं ? जिन माता की चर्चा हमारे सम्पूर्ण सैनिक बड़ी श्रद्धा के साथ किया करते हैं, वे माता क्या शीला ही थी ?

उप०—हां अशोक, वह शीला ही थी। आज सूर्यास्त के समय शीला को इस षड्यन्त्र की पूरी सूचना प्राप्त हो गई थी। तब उसके सामने तीन मार्ग खुले थे। या तो वह तुम्हारा वध हो जाने देती। यह तो तुम जानते ही हो कि हम लोग दोनों पक्षों को इस बात का वचन दे चुके हैं कि हम युद्ध की किसी बात में कोई दखल नहीं देंगे। इसलिए यदि शीला भी यही करती तो उसे कोई दोष नहीं दे सकता था। दूसरा यह कि शीला तुम्हें उस षड्यन्त्र की सूचना दे देती। उस दशा में तुम स्वभावतः सतर्क रहते और उन सबका वध करवा डालते। और तीसरा

यह कि शीला तुम्हारी जगह अपनी बलि देकर तुम्हें और षड्यन्त्रकारियों—दोनों को बचा लेती। अशोक, शीला ने इसी तीसरे मार्ग का अवलम्बन किया है।

अशोक—यह किस तरह आचार्य ? शीला कहां है ? जल्दी बताइए, वह कहां है ?

उप०—उद्विग्न मत होओ अशोक ! सुनो, (भरे हुए स्वर में) रात का दूसरा प्रहर अब समाप्त हो गया ! शीला सम्भवतः अब तक तुम्हारी जगह अपने प्राण दे चुकी होगी !

अशोक—(उछलकर खड़ा हो जाने के साथ) किस जगह ? जल्दी बताइए, मैं उसे किस जगह खोजूं आचार्य ?

उप०—(बड़ी धीमी आवाज में) *जिस व्यक्ति से तुमने अपनी पोशाक बदली थी, उसकी तुम्हें याद है। वही शीला थी। वह तुम्हारे तम्बू में इसलिए ठहर गई थी कि तुम्हारी जगह स्वयं अपने प्राण दे सके। तुम्हें यहां लाने का एकमात्र उद्देश्य उस षड्यन्त्र से तुम्हारी जीवनरक्षा करना ही था। मुझे भय है कि इस जगत् की सबसे बड़ी विभूति शीला अब इस संसार को छोड़कर चली गई होगी !* (गला भर आता है)

अशोक—ओह !

[अशोक का सारा शरीर कांपने लगता है। वह बड़ी शीघ्रता से बाहर निकलता है। एक घोड़ा तम्बू के बाहर बंधा हुआ है। इस घोड़े पर सवार होकर वह हवा की तेजी से अपने शिविर की ओर रवाना हो जाता है।]

[दृश्य बदलता है]

स्थान

समय—आधी रात के दो घड़ी बाद

[सम्पूर्ण शिविर में कोलाहल मचा हुआ है। सम्राट् अशोक के तम्बू के बाहर, एक खुली जगह को घेरकर हजारों सैनिक पंक्तिबद्ध खड़े हैं। मध्य में सैकड़ों उल्काओं का तेज प्रकाश हो रहा है। इस सबके बीचोबीच शीला की मूर्छित देह पड़ी है; उसकी छाती तथा कन्धे पर भारी घाव पहुंचे हैं। शीला का सम्पूर्ण शरीर खून से लथपथ है। उसके प्रभाहीन चेहरे पर अब भी प्रसन्नता और सन्तोष की छाया दिखाई दे रही है। तीन-चार प्रमुख अर्हाह उसके घावों की परीक्षा और मरहमपट्टी कर रहे हैं। शीला के पैरों के निकट मगध महा-साम्राज्य के महान सम्राट् अशोक बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहे हैं। उनके बाल अस्त-व्यस्त हो गए हैं। सारा शरीर धूल से भरगया है।]

प्रधान अर्हाह—(धीरे से) सम्राट्, धैर्य धारण कीजिए। अभी इनमें प्राण बाकी हैं। परमात्मा ने चाहा तो ये होश में आ जाएंगी।

अशोक—राजवैद्य, जिस किसी तरह सम्भव हो, मेरी भाभी को बचा लीजिए। मैं सारी उम्र आपका उपकार नहीं भूलूंगा। (वैद्य के सम्मुख हाथ जोड़ देते हैं)

प्रधान अर्हाह—अधीर न होइए सम्राट्! परमात्मा से प्रार्थना कीजिए कि वे हमारे हाथों में यश दें!

[सम्राट् अशोक सचमुच घुटने टेककर और दोनों हाथ जोड़कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगते हैं। उनके रोने की आवाज तो अब धीमी

[... गई है, परन्तु उनकी सिसकियां और भी अधिक करुण हो गई हैं।]

अशोक—(सिसकते हुए) पिता, तुम्हारी अनन्त दया से आज मुझ को जो प्रकाश दिखाई दे गया है, उससे मुझे इतना शीघ्र वंचित न कर देना !

[इसी समय सम्पूर्ण बौद्ध भिक्षुओं सहित आचार्य उपगुप्त का प्रवेश। शीला की मूर्च्छित देह को देखकर उपगुप्त यह निश्चित समझ लेते हैं कि वह निर्जीव हो चुकी है। उनका धैर्य टूट जाता है और वे भी धीरे-धीरे सिसक पड़ते हैं। सभी भिक्षु मगध-सैनिकों के आगे पंक्ति बांधकर खड़े हो जाते हैं।]

उपगुप्त—(निकट आकर) ओह, बच्ची मेरी ! शीला ! तुम कहां ... (दोनों हाथों से मुंह ढंक लेते हैं)

प्रधान जर्राह—इनमें अभी प्राण बाकी हैं आचार्य ! आप अधीर न हों !

[उपगुप्त के मुंह पर प्रसन्नता की एक उज्ज्वल-सी झलक दिखाई देने लगती है। इसी समय शीला आंख खोल कर धीरे-धीरे इधर उधर देखती है।]

शीला—(बहुत ही क्षीण स्वर में) मैं कहां हूं पिताजी ?

पांचवां दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का नगर-भवन

समय—सायंकाल

[नगर-भवन के आंगन में नागरिकों की अपार भीड़ जमा है]

एक नागरिक—आज यह कैसी अनहोनी बात होने लगी ! नागरिकों की भीड़ में आने का साहस कैसे करने लगे हैं ?

दूसरा नागरिक—तुम्हें मालूम नहीं है क्या ? सम्राट् अब पहले के सम्राट् नहीं रहे। उनमे परिवर्तन आ गया है।

तीसरा नागरिक—यही न कि उन्होंने आचार्य उपगुप्त से दीक्षा लेकर बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया है !

दूसरा नागरिक—नहीं, सिर्फ इतना ही नहीं। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि वे अब अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रजा की भलाई मे लगा देंगे।

चौथा नागरिक—अजी, ये सब दिखावे की बातें हैं !

पांचवां नागरिक—बड़े आदमियों की बातें भी बड़ी होती हैं !

पहला ना०—मुझे भय है कि आज कोई नागरिक सम्राट् पर आक्रमण ही न कर दे।

चौथा ना०—ऐसा होगा, तब तो खैर नहीं। अभी से आग चलना चाहिए। आखिर है तो वही अशोक न ! बौद्ध हो जाने से क्या हुआ। सभी को जिन्दा जला डालेगा।

[इसी समय सुनाई देता है, 'सम्राट् आ गए।' कुछ ही क्षणों में सम्राट् एक ऊंचे चबूतरे पर दिखाई देते हैं। सब लोग खड़े होकर उन्हें प्रणाम करते हैं, और सब ओर शान्ति छा जाती है।]

पहला नाग०—(धीरे से) सम्राट् ने आज ये साधुओं के मामूली वस्त्र क्यों पहन रखे हैं !

दूसरा नाग०—मैंने पहले ही कहा था न कि वे बिलकुल बदल गए हैं।

तीसरा नाग०—साथ मे कोई शरीर रक्षक भी तो नहीं है।

चौथा नाग०—प्रतीत तो ऐसा ही होता है।

पांचवां नाग०—चुप रहो, देखो सम्राट् कुछ कहना चाहते हैं।

अशोक—(खड़े होकर) भाइयो, आज अपने हृदय की कुछ बातें

आपसे कहने के लिए मैं आप के बीच आया हूं। मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि मेरा निवेदन आप लोग ध्यान से सुनें।

[नगर-भवन के आंगन में गहरा सन्नाटा छा जाता है]

नागरिको, मैंने आप लोगों पर, मगध-साम्राज्य की प्रजा पर, और कलिंग के सम्पूर्ण निवासियों पर अनगिनत और बड़े-बड़े अत्याचार किए हैं। अपनी शक्ति के मद में अन्धा होकर मैं अभी न जाने क्या-क्या अनर्थ और अत्याचार करता, परन्तु एक देवी ने अपने अलौकिक चमत्कार से मेरी आंख की पट्टी खोल दी। उसने मुझे सच्ची राह दिखा दी। आज मैंने अनुभव कर लिया है कि अपने जीवन में जो भारी अनर्थ मैं अभी तक कर चुका हूं, उनका प्रायश्चित्त भी नहीं है। परन्तु उसी देवी ने मुझे धैर्य दिया है, मुझे साहस बंधाया है। मैं उसका गुनहगार था, इतना बड़ा गुनहगार था, कि अपने उस भारी अपराध को बताते भी मेरी जिह्वा लड़खड़ा जाती है। परन्तु उसने मुझे माफ कर दिया! न केवल माफ ही कर दिया अपितु मेरे बदले में वह अपनी जान तक देने को तैयार हो गई। भाइयो, अपनी उसी भाभी शीला के आशीर्वाद के बल पर मैं आज अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगने आया हूं। आप चाहें तो मुझे दण्ड दीजिए। मैं उसके लिए सहर्ष तैयार हूं मेरा कोई शरीर रक्षक मेरे साथ नहीं है। मैंने निश्चय कर लिया है कि भविष्य में मैं कभी कोई शरीर रक्षक अपने साथ नहीं रखूंगा। आपमें से यदि कोई सज्जन मुझे मेरे पापों की सजा देना चाहें, तो वे आगे बढ़कर आएं और मुझे सजा दें। मैं जरा भी विरोध नहीं करूंगा!

[अशोक अपनी गरदन झुकाकर खड़े हो जाते हैं। परन्तु कोई नागरिक आगे नहीं बढ़ता]

अशोक—(गरदन सीधी करके) तो भाईयो, क्या मैं . .

आप सबने मुझे माफ कर दिया ?

सभी नागरिक—सम्राट् अशोक की जय हो !

अशोक—(उत्साह के साथ) पाटलिपुत्र के नागरिको, मैं हृदय
तुम्हारा धन्यवाद करता हूं। तुमने अपनी महान् उदारता से मुझे उ
लिया। अब मैं निश्चिन्त होकर अपना जीवन अपने महान् गुरु मह
बुद्ध के सन्देश को पूरा करने मे व्यय कर सकूगा। भाइयो,
महात्मा बुद्ध को साक्षी कर यह घोषणा करता हूं कि भविष्य में
विशाल मगध साम्राज्य को अपनी सम्पत्ति नहीं समझूगा। यह
साम्राज्य आप सबकी, मगध के प्रत्येक नागरिक की सम्पत्ति
मैं तो आपका सेवक-मात्र हूं। इस राज्य का उद्देश्य विश्व-भर मे
दया और मनुष्यत्व का प्रचार करना है। मैं इसी उद्देश्य के
जीऊंगा और जहा तक बन पडेगा अपने जीवन भयकर
का प्रायश्चित करने का प्रयत्न करूंगा।

आओ भाइयो, आज हम मिलकर ससार को एक नया पाठ पढ
शुरु करें। हम अपने व्यवहार से सिद्ध करदें कि हमारा यह
साम्राज्य राजनीति और शक्ति-संघर्ष के लिए नही, यह धर्म के प्र
के लिए है। और साथ ही साथ हम यह भी सिद्ध कर दें कि हम
यह धर्म सिद्धान्तों का धर्म नहीं, क्रिया के आचरण का धर्म
मैं घोषणा करता हूं कि स्वयं बौद्ध होते हुए भी मैं किसी मनुष्य
इस कारण घृणा नहीं करूंगा, अथवा इस कारण उसे छोटा
प्रमाणा नही समझूंगा कि वह बौद्ध नही है। आओ भाइयो, आज
सब मिलकर यह व्रत लें कि हम मनुष्य से घृणा नहीं करेंगे। हम
यह प्रतिज्ञा करें कि हम किसी पर अत्याचार नही करेंगे। प्राणि-मा
लिए सेवा और सहानुभूति का व्यवहार हमारे इस 'धम्म-साम्राज्य'
ध्येय होगा। हम अपने-आप कष्ट चाहे भले ही सह लें, परन्तु

पड़ोसी को दुःखी न होने देंगे। आओ भाइयो, हम लोग आज यह संकल्प लें कि हम इसी भूमि पर, अपने इसी देश में, स्वर्ग की सृष्टि करके दिखा देंगे। आचार्य उपगुप्त हमारा नेतृत्व करेंगे और हम 'धर्म-महासाम्राज्य' की प्रवर्तिका होंगी देवी शीला!

सभी नागरिक—(ऊँचे स्वर में) सम्राट् अशोक की जय हो! मगध का 'धर्म-साम्राज्य' चिरजीवी बने!! देवी शीला अमर रहे!!!

[नेपथ्य में राजकीय वाद्ययन्त्रों से एक बहुत ही मधुर और आशापूर्ण स्वरलहरी निकलने लगती है।]

छठा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के राजमहल का उद्यान

समय—मध्याह्नपूर्व

[सम्राज्ञी तिष्यी के साथ शीला कदम्ब के पेड़ के नीचे बैठी है, सम्राट् अशोक की सबसे छोटी कन्या संघमित्रा उसकी गोद में है। उसके पास ही चार वर्ष का बालक महेन्द्र खेल रहा है।]

तिष्यी—*उन्होंने दूध तक पीना छोड़ दिया है बहन! कहते हैं जब तक मेरे राज्य में एक भी पशु की हत्या होती है, मेरा दूध पीने का अधिकार नहीं।*

शीला—*वे जैसी साधना चाहते हैं, उन्हें करने दो। आगे आनेवाली सन्तति सम्राट् अशोक के कारनामों को आदरपूर्ण आश्चर्य के साथ देखा करेगी।*

तिष्यी—राज्य के अनेक कर्मचारियों को शिकार का शौक था। उस दिन उन्होंने सब कर्मचारियों को बुलाकर बड़े स्नेह के साथ समझाया कि मैं किसी कानून द्वारा आप लोगों को अहिंसक बनाना नहीं चाहता, परन्तु आप सबकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी, यदि आप लोग

शिकार करना छोड़ दें। शिकार की जगह यदि आप दूर-दूर के प्रान्तों में प्रजाहित के उद्देश्य से जाना चाहें, तो इस कार्य के लिए आपको सरकारी कोष से मार्ग व्यय दिया जाया करेगा। परिणाम यह हुआ कि कर्मचारियों में से शिकार का शौक ही जाता रहा है।

शीला—सम्राट् ने उस दिन घोषणा की थी कि हम सब लोग इसी पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि करके दिखा देंगे। आज सच्चे अर्थों में उनकी वह घोषणा पूरी हो रही है।

तिष्यो—यह सब तुम्हारी दया का परिणाम है बहन!

शीला—तुम फिर से वही बातें कहने लगीं बहन! बोलो, तुमने मुझसे क्या प्रतिज्ञा की थी?

तिष्यो—मुझे माफ कर बहन! परन्तु! मुझसे रहा नहीं जाता।

[आचार्य उपगुप्त के शिष्य भद्रे भिक्षु का हाथ पकड़े हुए कुणाल का प्रवेश]

कुणाल—(शीला से) चाचीजी, इन्हें कहो न कि मुझे वही गीत सुना दें। मैंने इनसे हज़ार अनुरोध किए, परन्तु ये मानते ही नहीं।

शीला—कौन-सा गीत बेटा!

कुणाल—वही 'नैया' वाला गीत चाचीजी।

शीला—(तिष्यो से) तुमने वह 'नैया' वाला गीत सुना है बहन!

तिष्यो—नहीं तो।

शीला—(भिक्षु से) अच्छा बेटा, ज़रा एक बार वह गीत फिर से सौ सुना दो। सम्राज्ञी तुम्हारा वह गीत सुनना चाहती हैं।

भिक्षु—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा मा! (वह गीत गाने लगता है)

गीत

किधर चली नैया हमारी संगिनी

कहा सूने तट पर यह बंसी बजेगी !
चला जा रहा हूं मैं पतवार थामे
सरकता है बजरा अलक्षित दिशा में।
क्षितिज पर खड़ी मौन रंगीन बदली,
किसे ताक शरमा रही है यह पगली।
बहुत दूर है द्वीप जिसमें उतरना
अकेले ही मुझको सफर हाय ! करना।
यह पहने लगी वन की झाईं किनारे
झलकने लगे नील नभ में सितारे।
वहां दूर मन्दिर में दीपक जला है,
बटोही इधर कोई गाता चला है।
उदासी भरी विश्व कहता कहानी
किधर तुम छिपी बैठी हो मेरी रानी ??
कभी तुमने भी याद इसकी है जोही ?
चला जा रहा है यह इकला बटोही !
किसी जन्म में क्या मिलोगी है साथिन !
यह बजरा पड़ा आज सूना है तुम बिन।
[चित्रा का प्रवेश]

चित्रा—सब लोग इधर आग मे छिपे बैठे हैं, मैं सारा महल ढूंढ़ आई।

शीला—आओ दीदी ! *हम लोग फिर से वही गीत सुन रहे थे, जो* उस दिन शान्त चांदनी रात में बजरे की सैर करते [illegible] पहले-पहल तुम्हारे ही निकट बैठकर मैंने सुना था।

चित्रा—(शीला के गले में अपनी बाहुएं डालकर) एक शुभ समाचार सुनोगी बहन ?

शीला—कहो।

चित्रा—भाई तिष्य का पता मिल गया!

तिषी—(उत्सुकता से) राजकुमार तिष्य का पता मिल गया?

चित्रा—हां, बहन!

तिषी—तुमने आज यह कितनी खुशी का समाचार सुनाया है चित्रा!

शीला—वे मिले किस जगह?

चित्रा—कामरूप के जंगलों में बसे हुए भीलों के एक गाव में। और अशोक उन्हें लेने के लिए शीघ्र ही उधर जाने का इरादा कर रहे हैं। मैं भी साथ जाऊंगी।

शीला—तुम वहां जाकर क्या करोगी दीदी?

चित्रा—मैं जरूर जाऊंगी बहन!

शीला—मगर दीदी! मेरे पाटलिपुत्र छोड़कर चले जाने के दिन निकट आ रहे हैं।

[तिषी और चित्रा दोनों व्याकुल-सी हो जाती है]

चित्रा—यह क्या कहा बहन?

शीला—मुझे सीमाप्रान्त की ओर जाना होगा दीदी!

चित्रा—(शीला को छाती से लगाकर) तुम हम लोगों को छोड़कर कैसे जा सकती हो शीला!

तिषी—तुम नहीं जाने पाओगी।

शीला—यह कर्तव्य का सन्देश है दीदी! सीमाप्रान्त के निवासियों में से क्रूरता की और पाशविकता की भावना कम किए बिना चित्त को शांति नहीं मिल सकेगी। मैं अन्तरात्मा के इस आदेश की उपेक्षा कैसे कर सकती हूं बहन!

चित्रा—मैं यह सब कुछ नहीं जानती। यह असम्भव है। मैं तुम्हारे

बिना नहीं रह सकती । नहीं, तुम नहीं न जाने का

शीला—(जरा-सा मुस्कराकर) बस रा मैंने

रता से विचार किया था । मुझे भीमाकान्त की

महन ! और आना सदा के लिए होगा । ▮ धाना

के लिए समर्पित कर चुकी हूं, उसे तो पूरा करना

आचार्य उपगुप्त का सन्देश है; यही मेरी अन्तरात्मा

तिषी—तुम अपने इन बच्चों का मोह भी त्या

चित्रा—तुम चिन्ता न करो तिषी ! देखती हूं,

देता है ! यह भी कभी हो सकता है ! उह !

[शीला मुस्करा पड़ती है]

[इसी समय बालक महेन्द्र शीला के निकट आ

महेन्द्र—(शीला से) मुझे अपनी गोद में बिठा लो

चित्रा—नहीं, ये तुम्हारी मां नहीं हैं, ये संघमित्र

महेन्द्र—(मचलकर) नहीं, मेरी मां है !

चित्रा—ये अगर तुम्हारी मां हैं तो बोलो कुणाल

महेन्द्र—कुणाल की अम्मा (तिषी की ओर इशार

हैं ।

[सब लोग हंस पड़ते हैं । शीला महेन्द्र को

अपनी छाती से लगा लेती है ।]

सातवां दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र के राजमहल का मुख्य

समय—प्रभात

[शीला बौद्ध भिक्षुओं के पीले वस्त्र पहनकर सदा के

की ओर प्रस्थान कर रही है । फाटक पर आ

अशोक, चित्रा, तिष्य आदि सभी लोग उपस्थित हैं। राजमहलों के बाहर सड़क के दोनों ओर पंक्ति बांधकर हज़ारों नागरिक खड़े हैं। आसमान में बादल छाए हैं। सब ओर पूरी शान्ति है। केवल उद्यान के किसी निकट कुञ्ज में से एक पपीहे की दर्द-भरी पुकार रह-रहकर सुनाई पड़ रही है। सम्राट् अशोक की आंखों में आंसू भरे हुए हैं। राजमहल की देवियां सिसक-सिसककर रो रही हैं।]

उपगुप्त—(सम्राट् से) धैर्य धारण कीजिए, सम्राट्! शीला एक बड़े उद्देश्य को लेकर सीमाप्रान्त को जा रही है। उसके लिए मंगल-कामना कीजिए।

अशोक—क्या आप अब भी अपनी आज्ञा बदल नहीं सकते आचार्य?

उपगुप्त—मेरी आज्ञा नहीं, अनुमति कहिए। यह तो शीला का निश्चय है। सम्राट् का अनुरोध तुम्हीं से है शीला!

शीला—(अशोक की ओर देखकर) मुझे चले जाने दो देवर! यह मेरे जीवन की साधना है। यह मेरी अन्तरात्मा की पुकार है।

अशोक—(एक क्षण चुप रहने के बाद गद्‌गद स्वर में शीला से) भाभी, हम अभागों को अपना अन्तिम आशीर्वाद तो देती जाओ!

शीला—(थोड़ा-सा मुस्कराकर) सुखी रहो देवर!

[इसके बाद शीला सब लोगों को नमस्कार करके बच्चों को प्यार करती है। चित्रा की सिसकियां बहुत करुण हो जाती हैं। शीला चलने ही लगती है कि सहसा बालक महेन्द्र 'मां! मा!' कहकर ज़ोर से रो उठता है और वह आगे

बढ़कर शीला का आँचल पकड़ लेता है।]

शीला—(महेन्द्र को गोद में उठाकर) रोओ मत बेटा! मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम अपने पिता के 'धम्म-साम्राज्य' के सबसे बड़े सेनानी बनो, मेरे राजा बेटा! (चुम्बन)

[महेन्द्र को पिता की गोद में देकर शीला धीरे-धीरे फाटक की सीढ़ियों पर से उतरकर सड़क पर आ जाती है। सभी नागरिक चुपचाप झुक-झुककर उसे प्रणाम करते जाते हैं। आगे-आगे शीला जा रही है, उसके पीछे आचार्य उपगुप्त हैं और उनके पीछे चार बौद्धभिक्षु। धीरे-धीरे वे सब दूर जाकर आँखों से ओझल हो जाते हैं। पपीहे की करुण पुकार अब भी उसी तरह सुनाई दे रही है।]